प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हास्पिटल रोड, आगरा ।

मुद्रक—
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस
बागमुजफ्फरखाँ, आगरा

भूमिका

'साहित्यरत्न' के द्वितीय खण्ड के विद्यार्थियों की यह कठिनाई रही है कि प्रान्तीय भाषा का अध्ययन करने का कोई साधन उनको सुलभ नहीं है। पिछले दस पन्द्रह वर्ष से हमने क्रियात्मक रूप से गुजराती के विद्यार्थियों को सहायता पहुँचाई है। हमने 'हिन्दी गुजराती शिक्षा' भी, जो अपने विषय की प्रथम और सर्व श्रेष्ठ पुस्तक है, इसी उद्देश्य से लिखी कि बिना अध्यापक की सहायता के विद्यार्थी गुजराती भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर सकें परन्तु गुजराती पाठ्यक्रम की पुस्तकों की कठिनाई इससे हल नहीं होती थी इसलिए हमने यह सोचा कि गुजराती पाठ्यक्रम की सभी पुस्तकों में से काम चलाऊ सामग्री एकत्रित करदी जावे। तो विद्यार्थियों का हित साधन अवश्य होगा। यह पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है।

इस पुस्तक में 'पारिजात' और 'इला काव्यो अनेरतन' में से लगभग ३०-३५ चुनी हुई कविताओं का पद्यानुसार भावार्थ दिया गया है। ये कविताएं वही हैं जिनमें से पिछले वर्ष परीक्षा में प्रश्न आये हैं या आसकते हैं। यद्यपि ये पुस्तकें जटिल हैं और बिना अध्यापक की सहायता के भावार्थ विद्यार्थियों को संतोष नहीं दे सकता तथापि विद्यार्थियों को इससे अपना काम चलाने में अधिक नहीं तो कुछ सहायता तो अवश्य मिलेगी।

'साहित्य प्रारम्भिका' को प्रश्नोत्तर के रूप में और 'ओतरानी दीवालो' को उसके प्रमुख प्रसंगों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'साहित्य प्रारम्भिका' में प्रश्न ही आते हैं। यदि विद्यार्थी

उन्हीं प्रश्नों को हृदयगम कर लेंगे तो वे ऐतिहासिक प्रश्नों और टिप्पणियों का उत्तर सरलता से दे सकेंगे।

'ओतराती दीवालों' के प्रसग उत्तम पुरुष में जैसा कि पुस्तक में किया गया है, लिखे गये हैं। उसपर आते ही दो प्रकार के प्रश्न हैं—एक तो 'ओतराती दीवालों' में से उत्तम पुरुष में कुछ घटनाओं का वर्णन और दूसरे साधारण ढग से परीक्षक द्वारा निश्चित प्रसगों का वर्णन।

विद्यार्थी काका कालेलकर के जेल जीवन के इन संस्मरणों में से इस पुस्तक द्वारा विषय का ज्ञान प्राप्त करके अपना काम चला सकते हैं।

'साहित्यविचार' में से भी चुने हुए पाठों का ही सारांश दिया गया है, इनमें कुछ गत पाँच-छै वर्ष में पूछे जा चुके हैं और शेष आगे पूछे जा सकते हैं।

इस प्रकार इस पुस्तक में संक्षिप्त रूप से काम की बातों को देने का प्रयत्न किया गया है। हम ज्योतिषी नहीं हैं और न पूर्णता का झूठा दावा करने वाले। विद्यार्थियों की हित की दृष्टि से जो कुछ हम कर सके हैं वह किया है, यदि इससे विद्यार्थियों को थोड़ा भी लाभ पहुँचा तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

—कमलेश

विषय सूची

साहित्य-प्रारम्भिका

कथा-साहित्य

ओतराती दीवालो

साहित्य-विचार

साहित्य-प्रारंभिका

प्रश्न - नरसिंह-मीरायुग नां प्रमुख कविओ नुं जीवन अने काव्य शैली ऊपर प्रकाश नाखो?

उत्तर— नरसिंह-मीरायुग गुजराती साहित्य का आरम्भ है, इसमें मुख्य तीन ही कवि अधिक प्रसिद्ध हैं।

(१) नरसिंह (२) भालण (३) मीरा। (१५७० – १६[illegible])

इसके साथ कुछ और भी लेखक हुए हैं जैसे—कायस्थ कवि केशव जिसने 'कृष्णलीलामृत' नामक काव्य लिखा है यह प्रभास पाटण का रहने वाला संवत् १५२६ मे विद्यमान् था! इसके बाद सं० १५४० में भीम नामक कवि ने 'हरिलीला षोडश कला' नामक काव्य लिखा, परन्तु उसने यह काव्य संस्कृत की एक पुस्तक के आधार पर लिखा'। जिसमें भगवान का सार है। सं० १५१२ मे पद्म नाभ' ने 'कान्हड़ दे प्रबन्ध' लिखा जिसमें युद्ध का वर्णन है। इसके उपरान्त परमेश्वर, जयशेखर, हीरानन्द इत्यादि और भी कवि हुए लेकिन प्रमुख ऊपर लिखे तीन ही कवि माने गये है।

(१) नरसिंह—(संवत् १४७० से १५३६)

गुजराती साहित्य में नरसिंह मेहता पुराने से पुराने कवियों में आते हैं वे सारे गुजरात तथा गुजरात के बाहर खूब प्रसिद्ध थे।

नरसिंह मेहता काठियावाड़ को छोड़ कर जूनागढ़ में आये हुए थे। इनके जीवन के बारे में ऐतिहासिक कोई प्रमाण नहीं केवल दन्त कथाएं प्रसिद्ध हैं। सुना यह जाता है कि वे बचपन में बहुत ही गवार तथा गंवार थे। इनका मन किसी काम धंधे में नहीं लगता था। वे भाभी के तानों से दुखी होकर भाई का घर

छोड़कर चल दिये थे और गोपीनाथजी की पूजा में पहुँच गये थे। इन्होंने गोपीनाथजी की सेवा बहुत ही श्रद्धा भक्ति से की थी जिससे वे बहुत ही प्रसन्न हुए। गोपीनाथजी कृष्ण लीला तथा राम लीला के दर्शन करने नरसिंह को भी अपने साथ ले जाते थे। वहाँ नरसिंह मेहता कृष्ण की रास लीला देखकर कृष्णमय हो गये तथा तभी से ये कृष्ण भक्ति में लीन हो गये। कृष्ण दर्शन के उपरान्त ये फिर भाई के पास आये, इनका द्वेष भाव मिट गया तथा भाई ने इनका विवाह कर दिया। इनके एक पुत्र तथा एक पुत्री थी। इसने उनका विवाह संस्कार भी किया। परन्तु यह पता नहीं कि इनकी आजीविका का क्या साधन था। केवल कृष्ण भक्ति में लीन हो भजन तथा कविता करते थे।

हमें यह मानना पड़ेगा कि वे बहुत ही ऊंची श्रेणी के ज्ञानी भक्त तथा संस्कारी कवि थे। उनका तत्व ज्ञान बहुत ऊंचा है, उनका संसार-ज्ञान विशाल तथा निर्मल है। इनकी भाषा सरल तथा रचना कलापूर्ण है। आपकी कविता में गीत माधुर्य तथा भाव माधुर्य स्वभाविक है।

उनकी प्रभातियों तथा ज्ञान के पदों में बुद्धि तथा कवित्व शक्ति का जो रूप है वह गुजराती साहित्य के किसी कवि में भी देखने को नहीं मिलता। इनकी कविता पर ग्रामीण तथा नागरिक दोनों ही बहुत मुग्ध थे। इन्होंने 'सुदामा चरित्र' तथा 'सहस्रपदी रास' बहुत ही सुन्दर लिखे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरसिंह मेहता पर गुजराती साहित्य को ही नहीं वरन् हिन्दी साहित्य को भी गर्व है और जब तक गुजराती साहित्य रहेगा, तब तक कवि की अमरता को कोई नहीं छीन सकता है।

भालण—नरसिंह मेहता के उपरान्त कितने ही छोटे कवि हुए होंगे किन्तु उनके उपरान्त जो कवि सम्मुख आता है वह

भालण है। इसका समय सं० १४६० से १५५० तक था।

भालण, सिद्धपुर-पाटण का रहने वाला था। इसने संस्कृत में लिखे गए काव्य 'कादम्बरी' का गुजराती में पद्यों में भाषान्तर किया है। यह अक्षर अक्षर भाषान्तर तो नहीं है लेकिन कथा, वर्णन वगैरह का मुख्य २ भाग आ जाता है। इसकी भाषा संस्कृत के विद्वान् पंडितों के अतिरिक्त कोई समझ सके ऐसी नहीं है।

भालण ने 'कादम्बरी' के उपरान्त 'सप्तशती' 'नलाख्यान' 'दशमस्कन्ध' इत्यादि लिखे हैं। मुख्य कर इसके 'रामबाललीला' के पद्य बहुत ही सुन्दर हैं। इसका वात्सल्य वर्णन बहुत ही हृदय-स्पर्शी तथा सजीव है। ये पद्य इतने सरस हैं कि अनायास ही ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

यह कारण है कि अगर नरसिंह मेहता के उपरान्त कोई दूसरा कवि नरसिंह की बराबरी में कुछ खड़ा हो सकता है तो वह भालण ही है।

मीराबाई—(संवत् १५५५–६० से १६२०–२५)

नरसिंह मेहता के उपरान्त भक्त कवियों में मीरा का नाम गुजराती साहित्य में ही नहीं वरन् पूर्ण भारतवर्ष में आता है। मीरा एक श्रेष्ठ भक्त कवयित्री थी। चालीस पचास वर्ष पहले यह मालूम होता था कि गुजराती साहित्य का आरम्भ नरसिंह-मीरा से होता है और समग्र केवल भक्ति साहित्य ही लिखा जाता था, किन्तु अब धीरे २ दूसरा साहित्य भी प्रकाश में आता जा रहा है।

मीराबाई मेड़ता के राठौर की पुत्री थी तथा चित्तौड़ के कुमार राणा के पुत्र भोजराज जी के साथ उनका विवाह हुआ था। भोजराज को विवाह के उपरान्त ही चला जाना पड़ा जिसका फल यह हुआ कि मीराबाई विधवा हो गई। मीराबाई को बचपन से ही कृष्ण भक्ति का रंग लग गया था इसलिए उनके विधवा

होने का उन्हें कोई दुख नहीं हुआ। उन्होंने अपने जीवन को कृष्ण भक्ति में ही समर्पित कर दिया।

भजन कीर्तन गाना, साधु सन्तों की सेवा करना कृष्ण की सेवा में तल्लीन रहना, कृष्ण के साथ सहवास तथा अन्त में कृष्ण को ही यह देह चढ़ाकर कृष्ण में ही लीन हो जाना, इस लिए मीराबाई जी रही थीं।

राजसी जीवन व्यतीत करने के लिए उनको समझाया गया, कई प्रयत्न किये गये पर सब निष्फल हुए। वे तो कृष्ण की सेवा में ही जीवन चढ़ाने को राजसी रूप छोड़ कर द्वारका चली गई थीं।

मीराबाई की प्रामाणिक कृतियाँ बहुत थोड़ी हैं। परन्तु जो कुछ है उसका समाज के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इनके भजन हृदय को तल्लीन करने में बड़े सफल हुए हैं, उनकी वाणी में मनमोहक तथा आकर्षक है। उनके ही हृदय के भाव हरेक के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर देते हैं।

मीराबाई सदा कृष्ण भजन में मग्न रहती थीं, उन्हें इस संसार से कोई प्रेम नहीं था, वे गाती तो कृष्ण के लिए, हसंती कृष्ण के लिए, विरह में जलती तो कृष्ण के लिए।

गुजराती और हिन्दी साहित्य दोनों में ही आज तक कोई स्त्री ऐसी भक्त कवि भी नहीं हुई, जिसके ऊपर दोनों भाषा गर्व कर सकें।

मीराबाई युगों तक गुजराती ही नहीं वरन् हिन्दी साहित्य में भी अमर रहेंगी।

प्रश्न २--नीचे लख्या साहित्यकारो ना विषय माँ तमे शू जाणो छो, पोतानी मातृभाषा मा लखो।

(१) अखो (२) प्रेमानन्द (३) शामल (४) वल्लभ मेवाडो।

उत्तर—गुजराती साहित्य में नरसिंह-मीरा युग के उपरान्त

प्रेमानन्द युग आता है। ये चारों साहित्यकार इस युग के प्रमुख हैं।

(१) अखो--संवत् १६७१ से १७३०

अखा जी का समय सं० १६७१ से १७३० तक का माना जाता है. ये जाति के सुनार थे तथा सुनार का ही कार्य करते थे। ये बड़े चरित्रवान, कुशल कलाकार थे। अखोजी ने मनुष्य जीवन की त्रुटियों का अनुभव कर उसी पर अपने विचार प्रगट किये हैं। यही नहीं इन्होंने सत्यता से दंभ को दूर करने के लिये, अत्याचार, अनाचार जैसे विषयों को लिया है। इनके सभी पद कर कुल ७४६ हैं किन्तु इनमें भी सत्यज्ञान, निष्पक्ष टीका मनुष्य जीवन के दोषों तथा गुणों पर बहुत ही सुन्दर तथा सरल ढंग से लिखा है।

आपकी कविता संक्षिप्त किन्तु भाव पूर्ण होती है, कहीं-कहीं पर तो अर्थ समझना ही मुश्किल हो जाता है। इन्होंने 'अखेगीता', 'गुरु शिष्य संवाद' 'अनुभव बिंदु' आदि ग्रंथ लिखे हैं तथा साथ ही कितने ही भजन इत्यादि लिखे हैं जिनको पढ़ने वाले विरले ही होते हैं।

आपको संसारी लोगों से तथा संसारी जीवन से घृणा हो गई थी इसी कारण से ये संसारी झगड़ों को छोड़ कर वैराग्य से निकल पड़े थे। बहुत कठिनता से इन्हें सच्चे गुरु मिल पाये थे जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त कर इन्होंने अपने को सफल समझा।

(२) प्रेमानन्द--प्रेमानन्द का समय सं० १६९२ से १७५० तक माना जाता है। ये गुजराती साहित्य के कवियों में प्रमुख माने जाते हैं। यही कारण है कि गुजराती साहित्य का दूसरा युग इनके ही नाम से प्रसिद्ध है। इनकी कविताएं बहुत ही रस पूर्ण तथा लोकप्रिय हैं। प्रेमानन्द के आख्यान इतने लोकप्रिय थे कि समाज का साधारण ज्ञान वाला भी इन्हें पसन्द करता था, इनके आख्यानों में कपड़ेरज मुख्य है। इन्होंने कविता लिखने

की शक्ति के कारण ही वे प्रशंसा तथा कीर्ति के पात्र हैं। सदा जीवन में ज्ञान-पूर्ण तथा विनोद देने वाली वस्तुओं की भी आवश्यकता रहती है गुजराती साहित्य में इसकी बहुत कमी थी जिसे प्रेमानन्द ने अपनी काव्य शक्ति से पूरा किया।

गुजराती ब्राह्मण पहले संस्कृत मे ही कथा किया करते थे, किन्तु उसे बहुत कम लोग समझ पाते थे, धीरे धीरे उन कथाओं का गुजराती में अनुवाद हो गया और ब्राह्मण लोग ताँबे का एक घड़ा बजाते हुए उन्हें गाकर सुनाने लगे। ये माणभट्ट कहलाते थे। प्रेमानन्द भी इसी प्रकार कथा करते थे। इनकी कथा में लोगों को साहित्य गुण, ज्ञान, विनोद सब मिला करता था। इसके कारण इनकी कथाओं का बहुत प्रचार हुआ और ये अधिक लोक प्रिय हो गये।

इन्होंने 'दशमस्कन्ध, 'मामेरून', 'नलाख्यान', इत्यादि लिखे हैं तथा 'सुदामा चरित्र', 'श्राद्ध', 'हरिश्चन्द्राख्यान, 'चन्द्रहास आख्यान', 'ओखाहरण', 'अभिमन्यु', और 'सुधन्वा', इत्यादि अनुवाद किये हैं।

आज वह युग बदल गया है, ऐसे साहित्य पर पहले लोग बहुत विश्वास करते थे किन्तु आज यह विश्वास लुप्त हो गया है। हाँ, ग्रामीण जनता अवश्य इससे विनोद तथा ज्ञान उपार्जन के रूप में मान लेती है।

प्रेमानन्द की ये कृतियाँ केवल उस समय के लिए थीं। आज तो ये केवल साहित्य की दृष्टि से मूल्यवान् हैं। वह रस आज के समाज को उनमें नहीं आता। कारण प्रेमानन्द ने गा गा कर उनका प्रचार किया था जिसके कारण वह लोक प्रिय हो गया था। हँसाने का उनका प्रथम सिद्धान्त था किन्तु उन्होंने विनोद करवाने के पीछे बड़े-बड़े अच्छे पात्रों का भी चरित्र गिरा दिया है जिसके कारण हृदय में प्रेमानन्द के प्रति कुछ होती थी। यह प्रेमानन्द में सबसे बड़ी कमजोरी थी।

प्रेमानन्द का अपना, निर्दोष, ऊंचा, सच्चा साहित्य बहुत कम है। इसलिये इनकी कितनी ही कृतियों को साहित्यिक रूप देना एक विचार-पूर्ण प्रश्न है।

प्रेमानन्द के जीवन के प्रति दंत कथाएं बहुत हैं। बचपन में यह अपढ़ थे। भाग्य से कोई भला आदमी मिल गया और यह लेखक हो गया। प्रेमानन्द को अपनी भाषा पर अधिक गर्व था।

शामल—संवत् १७४० से १८२५-३० तक।

शामल के जीवन के बारे में कुछ पता नहीं, इतना अवश्य है कि वह अहमदाबाद के पास जेतलपुर का निवासी था।

शामल भी प्रेमानन्द का समकालीन था, इसने भी एक बार इतनी ही प्रतिष्ठा पाली थी जितनी कि प्रेमानन्द ने। शामल वार्ताकार (कहानी कार) था। इसके आख्यान शहरों में अधिक प्रचलित थे तथा वार्ता गांवों में। इसका साहित्य अधिकतर संस्कृत पर आधारित हुई कथाएं हैं। प्रश्नोत्तर कर इसे रोचक बना देने का शामल में एक विशेष गुण था तथा वह स्वयं इसकी शैली थी।

इनकी वार्ताओं को सुनकर एक जमींदार इतना प्रसन्न हुआ था कि इन्हें अपने गांव ले जाकर जमीन दे दी थी तथा वार्ताओं को लिखने के लिए खूब सहायता की। आज के युग में शामल की वार्ता तथा आख्यान सभ्य पुरुषों में लोकप्रिय नहीं रहे। शामल ने 'मदन मोहना', 'विद्याविलासिनी', 'रावण मन्दोदरी संवाद', इत्यादि पुस्तकें लिखी हैं।

शामल की कितनी ही बातें ध्यान देने के योग्य हैं, विशेष कर इसके नायक बहुत बहादुर, साहसिक, कार्य कुशल तथा कठोर देह व बड़े शरीर वाले होते हैं।

वल्लभ मेवाड़ो—संवत् १७०० से १८११ तक

वल्लभ मेवाडो अहमदाबाद का रहने वाला था माता के प्रति अनन्य भक्ति होने के कारणवह चुंवाल में रहा। उसने करीब १११ वर्ष की उम्र भोगी थी।

वल्लभ गुजराती साहित्य में माता के भक्त के रूप में आता है। गुजरात में माता की भक्ति की प्रथा बहुत पुरानी है। तथा सदा माता की उपासना 'गरबा' गाकर की जाती है। वल्लभी 'गरबा' लेखक के रूप मे ही अपना साहित्य लिखा है। वल्लभ के गरबों में ताल, राग, स्वर का जो प्रवाह है वह उसकी मौलिकता है। यह नहीं कि उसकी नई सृष्टि है किन्तु उसमें उसने नई शक्ति, नया उत्साह तथा नया शौर्य भरा है। मातृ भक्ति के साथ-साथ वल्लभ ने समाज के क्रूर रीति रिवाजोंपर भी टीका की है।

प्रश्न २—दयाराम युग की साहित्य रचना पर एक लेख लखो, जे ४० लाइनो थी वधारे ना होय ?

उत्तर—स० १८२५ से १९०० तक का समय गुजराती साहित्य में दयाराम युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में भक्ति तथा ज्ञान की तृष्णा समाज में खूब चढ़ी हुई थी। इसी कारण इस युग में ज्ञान तथा भक्ति सम्बन्धी साहित्य लिखा गया है। लोगों को उपदेश देकर उनको जीवनका सच्चा आनन्द प्राप्त करना ही कवियों का प्रधान कर्तव्य था। उन्होंने लोगों का भगवत भजन तथा परोपकार की ओर आकर्षित कर उनके जीवन को सफल बनाने की ही सलाह दी। लोगों में आत्म सतोष, परोपकार सेवा तथा उपासना की ही प्रवृत्ति अधिक थी। इस युग में प्रीतमदास स० १७७५-८० से १८५४ था। यह रामानन्दी सम्प्रदाय का था। बचपन में कोई रामानन्दी जमात

आई थी जिसके साथ वह चला गया था। इसने इस जमाने में शिक्षा पाने के उपरान्त अपना जीवन भगवत् भजन में अर्पित कर दिया था, इसने 'भगवत गीता', 'अध्यात्म रामायण', 'एकादशस्कन्ध', इत्यादि पुस्तकों का गुजराती में अनुवाद किया। इसके पदों में रस, शब्दालंकार, आदि स्वाभाविक रूप से आजाते हैं।

इसके पदों में लोगों को तथा गाने वाले को खूब रस तथा प्रेरणा मिलती है, इस कारण वह लोक प्रिय हो गया था। इसकी शैली बहुत ही प्रिय तथा ज्ञान-पूर्ण है और वह भगवान के प्रेम में भरी हुई है। वह लिखता है।

हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायर नु काम जोने।
प्रेम नो पंथ छे न्यारो सर्वथी, प्रेम नो पंथ छे न्यारो।
भक्ति जग मां करे नर मांई, जाके धड पर शीस न होई।

प्रीतमदास के पदों में सुविचार, ऊंची प्रेरणा, के साथ बहुत ही सुन्दर काव्य शक्ति है।

इसके उपरान्त दयाराम आता है। यह सांसारिक था तथा भोग विलास में रमता रहता था। किन्तु दयाराम की कृतियाँ प्रीतमदास से अधिक शिष्ट हैं और आज भी गुजराती साहित्य में उनका बहुत सुन्दर तथा आदर है। इसकी भाषा [illegible] तथा सुन्दर है। इसने अपने यौवन काल में ही काव्य लिखना प्रारम्भ कर दिया था। इसके सद्भाग्य से एक इच्छाराम भट्ट नामक महात्मा मिल गये थे, जिनके कारण वह भक्ति की ओर झुक गया था। इसका साहित्य श्रेष्ठ गुजराती साहित्य में गिना जाता है। इसके तत्वज्ञान विषयक साहित्य, रसिक वल्लभ, '[illegible]' '[illegible] प्रेम रस [illegible]' इत्यादि पुस्तकें व पद बहुत ही [illegible] प्रिय हैं। इसी के साथ १८३६ से १८४१ में [illegible] तथा १८४७ से १८५८ में [illegible] नामक [illegible] हुए हैं। दोनों के वैराग्य तथा योग

का साधन किया तथा समाज को उपदेश और सत्य ज्ञान देने में यह बहुत सफल हुआ है। इसीप्रकार भोजो भी वेदान्त तथा योग साधक था। किसी महात्मा द्वारा उसे अच्छा ज्ञान मिला था। लेकिन उसका अध्ययन अधिक नहीं था, क्योंकि उसकी भाषा ग्रामीण यह अवश्य मानना पड़ेगा कि वह भक्ति परायण परमार्थी और सेवा करने वाला था। साथ ही इस युग में 'रामायण वालो गिरधर', 'चंडीपाठना गरबावालो', 'रणछोड़जी दीवान' इत्यादि कितने ही साधु-संत हुए जिन्होंने भक्ति का प्रचार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि दयाराम युग में जितने भी साहित्यकार हुए सभी ने भक्ति तथा ज्ञान का प्रचार किया, इसी कारण यह युग भक्ति युग के नाम से भी पुकारा जा सकता है।

प्रश्न ४—'अंग्रेजी शिक्षणनां पहेलां फलनां प्रकरण ऊपर एक संक्षिप्त लेख लखो ?

उत्तर-इस काल में गुजराती साहित्य में बहुत फेर फार हो गया था। नये २ लेखक अपनी नई २ शैलियों में लिखने लगे तथा गुजराती साहित्य उन्नति की ओर अग्रसर होता हुआ दिखाई देने लगा। गद्य पद्य दोनों ही साहित्यों ने अपनी उन्नति आरम्भ करदी।

ई० स० १८५७ में बम्बई युनिवर्सिटी की स्थापना हुई। इसके पहले लोगों में थोड़ा बहुत अंग्रेजी का प्रचार हो गया था, किन्तु युनिवर्सिटी की स्थापना के उपरान्त सम्पूर्ण देश में एक हलचल सी मच गई। और अंग्रेजी पढने के लिए लोगों में आकर्षण बढ़ गया। कारण अंग्रेजी पढ़े हुए लोगों को ही नौकरी मिलती थी। अंग्रेजी पढ़े हुए आदर की दृष्टि से देखे जाने लगे।

अंग्रेजों के आने के पहले देश में सामान्य ज्ञान का प्रचार था जिसमें विद्वान पंडित लोग वैद्यक, ज्योतिष संस्कृति की शिक्षा देते थे जिनसे केवल ब्राह्मण ही पढ़ते थे। कोई ऐसी शिक्षा

संस्था नहीं थी जिसमें सभी वर्ग शिक्षा न पाते हों। ब्राह्मण लोग जो कुछ पढ़ते थे उनके आधार पर ही वे बड़े घमंडी, ढोंगी तथा जाति अभिमानी हो गये थे। इसके बाद ही अंग्रेज राज्यकर्त्ता सत्ताधारी के रूप में हुए और लोगों में नई सत्ता के प्रति अत्यन्त श्रद्धा भक्ति पैदा हो गई। अंग्रेजों की शासन पद्धति देश की शासन पद्धति से श्रेष्ठ थी तथा उनके लोगों को प्रसन्न करने की शक्ति थी जिसके कारण उन्होंने सम्पूर्ण देश में संतापजनक वातावरण फैला दिया। उन्होंने शिक्षा का ध्यान रखते हुए स्थान स्थान पर अंग्रेजी शिक्षा संस्थाएं आरम्भ करदी और अंग्रेजी में ही परीक्षा लेना आरम्भ कर दिया। जिसके कारण लोगों पर पूर्ण रूप से अंग्रेजी तथा अंग्रेजों के रीति-रिवाज, रहन सहन, पहनावे का प्रभाव पड़ा। साथ ही यूनिवर्सिटियों में उच्च संस्कृत की शिक्षा भी आरम्भ करदी जिससे प्रत्येक भारतवासी अपने देश के प्रचलित मूर्खतापूर्ण रीति रिवाजों को समझने तथा उन पर विचार करने लगे। अब भी लोगों में पुरानी विचारधारा जड़ पकड़े हुए थी किन्तु नये पढ़ने वाले विचारों को बदलने का प्रयास करने लगे और दोनों के दृष्टांत देकर क्या पसन्द करना चाहिये, समझाने लगे। ऐसे विचारशील पहले गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी हुए थे। नए पढ़े लिखों में एक ऐसे व्यक्ति हुए जो अपने पुराने [illegible] रघुनाथ लालनाथ तथा रमणभाई महीपतराम जो आधुनिक ढंग पर जोर देते थे। परन्तु मनुष्य मात्र को नवीनता से प्रेम होने लगा था। गोवर्धनराम बहुत ही चिन्तनशील व्यक्ति थे उन्होंने अपने [illegible] द्वारा पुराने रीति रिवाजों में परिवर्तन कर 'सरस्वतीचन्द्र' नामक एक ग्रन्थ लिखा जिसमें बताया कि हमें जीवन में सुधारों की आवश्यकता है इसका [illegible] नहीं कि हम [illegible] की दृष्टि से देखने [illegible]। [illegible] [illegible] नवीन ढंग की, [illegible] है। इसमें [illegible] चर्चा की गई है [illegible]

बहुत विद्वत्तापूर्ण है। गोवर्धनराम कहानी लेखक, गम्भीर विचारक चिन्तन प्रेरक और उपदेशक के साथ उच्च श्रेणी के कवि थे। इसके उपरान्त उन्होंने 'लीलावती की जीवन कथा' 'दयारामनो अक्षरदेह', 'माडर्निग', 'शेक्सपीयर', 'स्नेहमुद्रा' इत्यादि पुस्तकें लिखी। उनके साथ ही यूनिवर्सिटी से निकले हुए कितने ही पंडित हैं जिन्होंने पूर्णरूप से साहित्य सेवा की है। जैसे— मणिलाल, नृसिंहभाई, नरसिंह राव, भोलानाथ, केशवलाल, हर्षदराय ध्रुव तथा रमणभाई महीपतराय। इनमें प्रत्येक ने अलग २ क्षेत्र मे कार्य किया है जिसके कारण गुजराती साहित्य अधिक समृद्धशाली हो गया। मणिलालजी पुराण-प्रेमी थे, पुराने विचारो का अध्ययन उनका अच्छा था उन्होंने पुराने विचारों का रहस्य बहुत ही सुन्दरता से समझाया है। आप तत्वज्ञानी थे। 'नारी प्रतिष्ठा', 'भाव विलास' तथा 'प्रेमीजन' और 'अभेदोर्मि' इत्यादि पुस्तकें लिखी हैं। इसके उपरान्त उन्होंने लेख, नाटक, कहानियाँ भी दी है। 'सिद्धान्त सार' आपकी सर्व-श्रेष्ठकृति है। आपकी शैली उत्कृष्ट है। आप गुजराती साहित्य मे अमर हैं।

नरसिंह राव भोलानाथ—उधर मणिलालजी की प्रथम काव्य पुस्तक 'प्रेम जीवन' सामने आई और उसी के साथ नरसिंहराव की प्रथम पुस्तक 'कुसुममाला' प्रगट हुई। यह पुस्तक गुजराती कविताओं को नवीन जन्म देने वाली मानी जाती है। अंग्रेजी तथा संस्कृत के अध्ययन के कारण इस पुस्तक को जो नया रूप मिला उसने पुस्तक की सुन्दरता को और अधिक बढ़ा दिया। इसके उपरान्त नरसिंहराव की 'हृदय वीणा', 'नूपुर झंकार', 'स्मरण संहिता' ये तीन काव्य संग्रह नवजीवन के नये साहित्यिक विचारों से पूर्ण हैं। नरसिंहराव नई कविता के आदि कवि हैं। इसके उपरान्त उन्होंने अपनी चिन्तनशक्ति द्वारा

अध्ययन पूर्ण लेख भी लिखे। हमें मानना पड़ेगा कि सफल कवि के साथ ये विद्वान गद्य लेखक भी थे।

इसके उपरान्त भाषाशास्त्र के सफल अभ्यासी केशवलाल ध्रुव हैं। इन्होंने संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन कर उनका भाषान्तर किया। ये धैर्यवान, कुशल तथा उद्योगी थे। आपके 'मुद्राराक्षस' 'गीत गोविन्द', 'विक्रमोर्वशी', 'श्रीहर्ष' इत्यादि ग्रन्थ देखने में आते हैं। सरल, सद्भाव, पूर्ण कुशल तथा उद्योगी होने के कारण ही आप गुजराती साहित्य में लोकप्रिय हैं।

उपरान्त रमणभाई महीपतराम की विविध साहित्य सेवा सम्मुख आती है। आप हास्य रस के प्रथम लेखक के रूप में पहले आते हैं। आपने समाज का कटाक्ष करते हुए बहुत ही सुन्दर हास्य लिखा है। प्रथम पुस्तक 'भद्रं भद्र' कटाक्ष के रूप में सदा अमर रहेगी। इसके बाद 'हास्य मन्दिर', 'नव ईसप नीति' इत्यादि लेखों में आपने सीधे, सरल ढंग से कविताओं में भी अपने उद्गार लिखे हैं। रमण भाई गुजराती के स्वतन्त्र नाटककारों में अपना ऊँचा स्थान रखते हैं। आपके 'राई नो पर्वत' नामक में पात्र विकास तथा प्रसंगों की कुशलता भरी पड़ी है। भाषा तथा विचार सौन्दर्यपूर्ण है।

इसी के साथ कितने ही साहित्य सेवी हुए हैं जिन्होंने गद्य पद्य दोनों को खूब उन्नति पर पहुँचाया है। हरिलाल हर्षदराय ध्रुव, आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, रत्नलाल, केशवलाल त्रिवेदी, नर्मदाशंकर देवशंकर मेहता, तथा छगनलाल मोहनलाल झवेरी इत्यादि लोगों ने गुजराती साहित्य को बहुत ही लाभ पहुँचाया है। इन लोगों ने सामयिक पत्रों द्वारा अधिक सेवा की है। आनन्दशंकर प्रखर बुद्धि के विद्वान थे। 'वसन्त' मासिक के द्वारा सामाजिक पत्रों तथा राष्ट्र सेवा की है। आपने 'आपणो धर्म', 'नीति शिक्षण' 'धर्म वर्णन', तथा 'हिन्दू',

इत्यादि अलग अलग विषय पर कितनी ही पुस्तकें लिखीं है। उत्तमलाल त्रिवेदी ने दूसरी ही ओर आकर्षण बढाया। आप स्थिर, गम्भीर, विचारक, निष्पक्ष तथा स्पष्ट विचार प्रदर्शक थे। आपने तिलककी गीताका गुजरातीमें बहुत सुन्दर भाषान्तर किया है। आपने 'समालोचक', तथा 'वसंत' द्वारा खूब साहित्य प्रचार किया है। नर्मदाशंकर देवशंकर मेहता ने 'तत्त्व ज्ञाननों इतिहास' 'शाक्त सम्प्रदाय' इत्यादि लिख कर सेवा की है। कृष्णलाल झवेरी ने फारसी तथा बंगाली का अध्यन कर गुजराती में अनुवाद किया। इन सब विद्वानों ने बम्बई यूनिवर्सिटी की स्थापना होने के बाद गुजराती समाज और साहित्य की सेवा की है।

इसके बाद बराबर नये-नये लेखकों द्वारा गुजराती साहित्य अच्छा समृद्धि शाली होता जा रहा है।

प्रश्न ५ – नीचे लख्या विषयों नां ऊपर 'साहित्य प्रारम्भिका' नों आधा ऊपर थी लेख लखो।

(१) नई कविता (नवी कविता)

(२) कथा साहित्य (नवल कथा तथा नवलि अथवा टुंकी-वार्ता का)

(३) नाटक का विकास (नाटक नुं विकास)

(१) नवी कविता

उत्तर—गोवर्धन राम, मणिलाल, रमण भाई इत्यादि सभी लोगों ने कविता लिखी और वे सब युग प्रवर्तक के रंग रंगी हुई है। लेकिन नये युग की कविता पर असर कर सके वह तत्त्व उनमें नहीं था। गुजराती कविता को नया रूप तथा नया आकर्षण देने वाली तो नरसिंह राव की ही कविता थी। वैसे उनकी कविता संख्या में बहुत थोडी थी किन्तु मणिशंकर रत्नजी भट्ट, बलवंत राय ठाकोर, हरिलाल हर्षदराय ध्रुव जैसे कवियों को प्रेरणा नरसिंह राव से ही मिली है। सं० १९६०-६५ में तथा उसके बाद हुए कलापी, बोटादकर, खबरदार, ललित इत्यादि

सभी कवियों में नरसिंह राव का ही प्रभाव प्रतीत होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि नई कविता के सर्जक तथा प्रेरक नरसिंह राव ही थे।

नरसिंह राव से मिला नया रूप सदा के लिए नहीं टिक सकता था, क्योंकि साहित्य और मुख्य कर कविताओं में युग के के साथ-साथ परिवर्तन होता रहता है। (नरसिंह मीरा युग की कविता पुरानी से पुरानी है, इसके उपरान्त प्रेमानन्द, अखो, शामल प्रीतमदास, दयाराम, नर्मद, दलपत, नयताराम इत्यादि सभी लोगों ने काव्य देह का रूपपरिवर्तन करने में भाग लिया है। इनके उपरान्त नरसिंह राव ने गुजराती कविता को नया रूप दिया। इनके बाद न्हानालाल कवि ने कविता को सुन्दर, अधिक आकर्षक, अधिक अलङ्कार मय तथा अधिक हृदयस्पर्शी रूप दिया।

मणिशङ्कर रत्नजी भट्ट ने अपनी कला का नया कौशल दिखाया कल्पना तथा भावना का चमत्कार के साथ इन्होंने थोड़ी किन्तु कला पूर्ण कविताएं दी है। छन्द, भाषा तथा अलङ्कार द्वारा नया सौन्दर्यमय काव्य लिखा है। सन् १८६८ में बलवन्तराय कल्याण राय ठाकोर ने अपनी रचनाओं द्वारा सत्कार पाया है। आपकी कविता में कमनीयता तथा बुद्धि वैभव भरा पड़ा है। इनके उपरान्त कलापी ने नरसिंह राव तथा न्हानालाल जैसा सत्कार पाया है। इनकी कविता में देशोन्नति के भाव हैं। 'चन्द्र' मासिक के द्वारा कलापी ने समाज में उत्साह तथा चेतना पैदा की। इनके भाव तथा भाषा में कोमलता थी, वे सदा दूसरे की चिन्ता किया करते थे। इनका काव्य भाव पूर्ण, सरल तथा सरस होने के कारण लोगों की जीभ पर चढ़ा रहता था। 'काव्य माधुर्य' में इनकी कला स्पष्ट हो जाती है। नरसिंह राव ने कविता को नया रूप दिया, कलापी ने मधुर अलङ्कार और [illegible] प्रसाद पूर्ण

छन्दों से साहित्य की वृद्धि की। हर्ष शोक के प्रसंगों को भाव पूर्ण बनाया और इनके साथ ही हमारे सामने न्हानालाल नये क्रांत्रि के रूप में आते हैं। इन्होंने कविता के सम्पूर्ण रूपों को मनोहर तथा भाव पूर्ण बना दिया। उन्होंने समझाया कि कविता की भाषा, सामान्य भाषा से अलग, अर्थमय, प्रकाशपूर्ण, माधुर्य तथा प्रसाद से भरी हुई हो। न्हानालाल ने प्रेम तथा विवाह सम्बन्धी कविता लिखकर साहित्य को नया रूप दिया। इस प्रकार की कविताओं से परिचित कराने के कारण न्हानालाल को 'प्रेम के पैगम्बर' भी कहते हैं। आपकी कविता में प्रकाश, प्रतिभा तथा प्रताप है। इनकी कविता में छन्दों की स्वतन्त्रता है तथा भाव नैसर्गिक, और स्वभाविक हैं। अलंकारों की शास्त्रीय पुरानी पद्धति छोड़कर उन्हें उन्होंने नयारूप दिया है। इनके भावपूर्ण गीत हृदयस्पर्शी, और उल्लासमय तथा शब्द माधुर्य तथा लयसे पूर्ण हैं। आपका काव्य गुजराती साहित्यका अनुपम अमर काव्य है। न्हानालाल के साथ ही साथ कवियों में 'खबरदार' समाजमें बहुत ही प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। खबरदार सामान्य श्रेणी होते हुए भी, बुद्धि तथा कल्पना, कवित्व और आदर्श, रसकी समझ तथा भावना में असाधारण प्रतिभाके व्यक्ति हैं। खबरदार के उपरान्त बोटादकर तथा ललित गुजराती साहित्य की वृद्धि करते हैं। बोटादकर ने दाम्पत्य प्रेम, हिन्दू घरों के आदर्श रूप तथा सुख बरसाने वाले भावों को दिया है। लेकिन ललित आरंभ से दुख में पडे हुए थे इस कारण आपकी कविता का आरम्भ विषाद, ग्लानि, असन्तोष तथा वैराग्य वृत्तिसे हुई। परन्तु धीरे २ इनके ऊपर से विषाद के बादल हटते गये और धीरे धीरे जैसे उन्हें जीवनके आनन्द का अनुभव मिलने लगा वैसे ही काव्य कृतियों में अन्तर आता गया। स्त्रियों के त्याग भरे जीवन का असर मनुष्य पर क्या होता है, जीवन का आदर्श क्या है इत्यादि विषयों पर लिखने लग गये।

इनके उपरान्त भी कितने ही लेखक और कवि हुए, जिन्होंने बराबर गुजराती साहित्यकी वृद्धि की। ऋतु वर्णन, राष्ट्रीय विषयों तथा बाल गीतों सम्बन्धी साहित्य लिखा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिन प्रति दिन गुजराती साहित्य में वृद्धि होती रही तथा होती रहेगी। लेकिन हमें यह मानना पड़ेगा कि ऐसे कवि जिनकी कविता अधिक लोकप्रिय तथा आनन्द देने वाली हो बहुत कम हैं।

परन्तु हमें यह आशा आज के होनहार तरुण कवियों से अवश्य है कि वे अपनी लोह लेखनी द्वारा बराबर साहित्य की भी वृद्धि करते रहेंगे।

कथा-साहित्य

(नवलकथा अने नवलिका)

नवल कथा (उपन्यास)

कहानी सुनना मनुष्य का प्राकृतिक स्वभाव है. आदि-काल से छोटी मोटी कहानियाँ मनुष्य कहता आया है तथा कहानियों का संग्रह होता आया है। कई कहानियाँ तो अधिक प्रिय होने के कारण युगों से चलती आ रही हैं। कहानी सुनने वाले को आनन्द लगे इसलिए पहले कहानियाँ पद्य-कविता में कही जाती थीं किन्तु गद्य में बहुत ही कम होती थीं। पहले ज़माने में कथाएं केवल पद्य में ही होती थीं और विशेष कर गुजराती साहित्य में पद्य में ही थीं. लेकिन धीरे २ जब प्रेस (छापेखाने) का प्रचार हुआ, तब से पद्य की वार्ताएं समाज के सम्मुख आईं और धीरे २ जब कहानियों का गद्य आरम्भ होता गया साहित्य में भी नया स्वरूप आने लगा; इन्हीं के द्वारा नाटकों तथा कहानी उपन्यासों को प्रेरणा मिली।

अङ्गरेजों में ऐतिहासिक गाथाओं का महत्त्व है, और अङ्गरेजी की प्रेरणा से ही नन्दकिशोर ने 'करणघेलो' नामक उपन्यास लिखा। वैसे इसमें आज की उपन्यास कला की दृष्टि से बहुत ही भूलें थी, किन्तु यह प्रथम, भावपूर्ण, सरल उपन्यास होने के कारण समाज में अधिक लोकप्रिय हो गया। और विशेषकर पाठशालाओं में तथा सामन्य जनता में वह अधिक सफल रहा। 'करणघेलो' के अनुकरण से दूसरी कितनी ही पुस्तकें लिखी गई किन्तु इतनी लोकप्रिय न हो सकीं। इसके उपरान्त १८८७ ई० में 'सरस्वतीचन्द्र' का पहला भाग प्रगट हुआ तभी से नवल कथा का सुथरा हुआ स्वरूप गुजराती को मिला। कई आलोचक इसे 'नवल कथा' के रूप में नहीं मानते हैं। किन्तु इसके अगले भागों में सस्कृत से आधारित कथाओं का रूप मिलता है। सरस्वतीचन्द्र सम्पूर्ण गुजरात में अधिक लोकप्रिय है। इसने गुजराती भाषा को नया रूप दिया है। और उपन्यास केवल शिक्षित वर्ग तक ही सीमित हैं। इस पुस्तक के आधार से कितने ही नये लेखकों को प्रेरणा मिली, और वे छोटी २ वार्ताओं को लिखने लगे। भोगीन्द्रराव दिवेटिया ने 'उपाकात', 'मृदुला', 'ज्योत्स्ना' आदि कृतियाँ कीं किन्तु इन पर सीधी गोवर्धन राम का असर था। उपन्यासों में भारतीय इतिहास सम्बन्धी कहानियाँ डाह्या-भाई रामचन्द्र की तरफ से प्रगट हुई।

अगर गुजराती नवल कथाओं में कोई पुस्तक 'सरस्वतीचन्द्र' के वाद अधिक सरल रूप में आती है तो वह नये लेखक की 'गुजरातके नाथ' है इसके उपरान्त 'पाटणकी प्रभुता' ख्यातिप्राप्त करती है। 'घनश्याम' के उपनाम से कन्हैयालाल मुनशी ने अपने उपन्यासों द्वारा गुजराती साहित्य को समृद्ध बनाना आरम्भ कर दिया। इन पुस्तकों के उपरान्त नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' तथा उपन्यास 'जय सोमनाथ', 'राजाधिराज', 'लोमहर्षिणी',

'किसका अपराध' इत्यादि लिखे और गुजराती साहित्य की कमी को पूर्ण किया।

मुंशी की असाधारण प्रतिभा, कौशल, शैली, भावपूर्ण भाषा सरसता तथा प्रवाह ने उनको गुजराती ही नहीं वरन् हिन्दी साहित्य में भी लोकप्रिय बना दिया। परन्तु उनमें राजा तथा रजवाड़े लोग की ही बात आती है। ऐसा मालूम होता है मानो वे सामान्य जनता को सदा के लिए भूल बैठे हैं। इनके साथ रमणलाल बसन्तलाल देसाई का जन्म १८९२ ई० में हुआ और वे 'जगत', 'दिव्येश', 'कोकिला', 'हृदय नाथ' जैसी सीधी सादी, साधारण पुस्तकों द्वारा लोगों में अधिक लोकप्रिय हो गये।

इनके साथ ही १८९७ ई० में झवेरचन्द मेघाणी हुए, जो साधु-सन्तों की तथा पुरानी बातों को कहते २ नये लेखक बनते गये। मेघाणी भी काठियावाड़ के पुरानी ऐतिहासिक गाथाओं के लिखने में बहुत ही लोकप्रिय हैं और वे आचार्य के नाम से पुकारे जाते हैं। 'वसुन्धरा', 'हृदयनाथ' 'गुजरगोधन' आदि पुस्तकें बहुत ही सुन्दर हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुजराती साहित्य में उपन्यासों का अच्छा विकास होता जा रहा है, इसका सबसे अधिक श्रेय श्री गोवर्धनराम, कन्हैयालाल मुंशी, रमणलाल, मेघाणी को ही है। वैसे छोटी मोटी नवल कथाएँ बहुत ही लिखी गई, किन्तु उनका क्षेत्र सीमित ही रहा और अधिक लोकप्रिय न हो सकीं।

नवलिका—(कहानियाँ)

हम पहले ही बता चुके हैं कि कथा साहित्य का विकास अंग्रेजी शिक्षा के साथ ही हुआ है इसी प्रकार कथा साहित्य पर अंग्रेजी पद्धति का [illegible] प्रभाव है।

हम यह जानते हैं कि भारतीय जनता मनुष्य जीवन का [illegible]

है और जन्म होते ही एक कहानी आरम्भ हो जाती है। संस्कृत में पुराने ममय से ही वार्ताएं चली आ रही हैं जैसे 'गुणाढ्य की बृहतकथा मजरी 'हितोपदेश' इत्यादि। इसी प्रकार गुजराती में भी ये कहानियाँ वर्षों से चली आ रही हैं, पर इनका विकास नहीं हो पाया था। कहानियाँ मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित होती हैं। मनुष्य को उपदेश देना, उसका विनोद करना, उसके जीवन के गुण दोषों का बताना इनका मुख्य आधार रहता है।

धीरे २ छोटी २ कहानियाँ मासिकपत्रों में ऐसे विषयों पर आने लगीं और उसका विकास आरम्भ हो गया। ऐसी कहानियों मे अद्भुत तथा चमत्कारी प्रसगों से कथा के रस को आकर्षण मिलने लगा। मुन्शी ने कहानियाँ लिखीं किन्तु वे इस प्रकार की नहीं थीं जिससे उन्हे कहानीकार कहा जा सके, उन कहानियों मे कला की दृष्टि से इतने गुण नहीं थे कि स्पष्ट 'नवलिका' कहला सकें। कहानियों का स्पष्ट तथा कलापूर्ण रूप 'धूमकेतु' में मिलता है। इनका जन्म सन् १८६२ में हुआ था और ये कहानी के प्रारभ के पहले लेखक के रूपमें ही हमारे सामने आते हैं। मानव-जीवन के अलग २ कोमल भावों का चित्रण धूमकेतु ने बड़ी कुशलतापूर्ण कहानियों से किया है।

मुन्शी की वार्तों में मानव स्वभावकी मूर्खता, अहंकार, अघटित आत्मगौरव भरा है। लेकिन 'धूमकेतु' की कहानियों में भावपूर्ण वातावरण, चिन्तनयुक्त कला का समावेश है तथा वह अपने पाठकों को आनन्ददायक कल्पना में विहार करवाता है। मुंशी के पात्र भी शहरी भद्र पुरुषों में से हैं किन्तु धूमकेतु के पात्र शहरी होते हुए भी सामान्य समाज के हैं। कहानी साहित्य में दूसरे सफल लेखक रामनारायण पाठक (जन्म सन् १८८७) आते हैं। इन्होंने भी मानसशास्त्र की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया है। किन्तु पात्र वही मुंशी के समान शहरी हैं। ग्रामीण जनता का सच्चा चित्रण केवल मेघाणी में मिलता है।

हालांकि इन्होंने दो चार ही कहानियाँ लिखी हैं। जीवन के विविध अंगों को लेकर अनुभाव पूर्ण कितनी ही कहानियाँ लीलावती मुन्शी ने भी लिखी हैं।

कथारम्भ में यह स्वाभाविक होना चाहिए कि पाठकों को उचित ज्ञान, उपदेश, सच्चा मार्ग मिलता रहे। तथा प्रत्येक प्रकार के वातावरण का अनुभव पाठक स्वयं कर सके। इनके साथ ही कुछ और लेखक हमारे सामने आते हैं रणजीतराम और राममोहनराय देसाई। इनमें प्रमुख रणजीत ने कुछ ही कहानियाँ लिखी हैं किन्तु उनमें पाठकों के लिए उचित मार्ग का दर्शन है। राममोहन राय ने 'रूपाली वार्ताओं' में मनुष्यजीवन के गूढ़ प्रश्नों का सुन्दरता से उत्तर दिया है।

कुछ कहानियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें विशेष बातें नहीं होतीं किन्तु उनमें हास्य, विनोद, कटाक्ष होते हैं। इनका प्रारम्भ रमण भाई ने किया है और उनके बाद जीवन के ऐसे अंगों का वर्णन धनसुखलाल ने किया है इनके साथ ही ज्योतीन्द्र भी सम्मुख आते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथा साहित्य में कहानियों का विकास 'धूमकेतु' से स्पष्ट रूप से होता जा रहा है।

३—नाटक का विकास

भारत नाटक साहित्य दुनिया के नाटक साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसके मूल में संस्कृत के नाटककार [illegible] जैसे ही हुए हैं।

[illegible] संस्कृत के नाटक साहित्य ने [illegible] किया है [illegible] नहीं [illegible]। संस्कृत [illegible] नाटक [illegible]

जाता है। वह भी केवल राम कृष्ण के जीवन सम्बन्धी है, पर उसे नाटक साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं दे सकते।

अंग्रेजी सत्ता आने पर देश में कुछ शान्ति फैली, और इसी के साथ शहरी समाज को मनोरंजन की आवश्यकता हुई। बम्बई मे पारसियों ने इसका आरम्भ किया। धीरे धीरे गुजराती साहित्य में भी इसका आरम्भ हुआ और 'गुजराती नाटक कम्पनी' के नाम से एक संस्था खोली। यह दस वर्ष के करीब चली और फिर दयाशंकर के हाथ बेचदी गई। दयाशंकर ने नये २ लेखकों से नाटक लिखवा २ कर खूब कीर्ति प्राप्त की। किन्तु इन नाटकों मे साहित्य कुछ नहीं था, उनका ध्येय केवल धन प्राप्ति ही था। इसमें कुछ नाटक सुन्दर भी थे और उच्च श्रेणी के गिने जाते थे-जैसे 'अजय कुमारी' केवल यही नाटक साहित्य की दृष्टि से कुछ महत्त्व रखता था। इसमें कुछ संवाद, गीत तथा कोई पात्रचित्र अच्छा था। इसके बाद इस कम्पनी का नाटक 'सौभाग्य सुन्दरी' समाज मे बहुत ही प्रिय हो गया था। इसके मूल लेखक नाथुराम सुन्दर जी थे। इसके उपरान्त मूलजी आशाराम ने एक कम्पनी 'मोरवी आर्य सुबोध नाटक कम्पनी' खोली। भाई वाघजी आशाराम (१८५०-१८५७) उस कम्पनी के लिये नाटक लिखते थे।

इनके बाद डाह्या भाई (ई० स० १८६७-१९१२) ने नाटकों मे सुधार करने के लिए नाटक लिखना आरम्भ किया। इनके नाटक ऐकता विषय पर अधिक थे। कुछ विद्वानों ने भी नाटक लिखना आरम्भ किया था पर वे सफल नही हो सके। क्योंकि उनकी साहित्यिक दृष्टि लोक प्रिय न हो सकी। हाँ, रण छोड भाई के नाटक 'ललिता दुख दर्शक' को अवश्य लोकप्रियता मिली थी।

इसे हम नहीं भूल सकते कि नाटक जीवन का एक आवश्यक तथा आकर्षक अंग है। ये नाटक इनके मफल न हो सके

पर नाटक नये-नये रूप में आते ही गये। पुराने विद्वानों ने अधिकतर पुराने संस्कृत नाटकों का अनुवाद करना ही उचित समझा। मणिलाल ने 'मालती माधव', 'उत्तर राम चरित' का भाषान्तर किया। हरिलाल हर्षदराय ध्रुव, बालाशंकर, उल्लासराय इत्यादि लेखकों ने नाटक लिखे पर सफल न हो सके। कालिदास के 'शकुन्तला' तथा 'श्री हर्ष' इत्यादि नाटकों के तो कितने ही अनुवाद हो चुके थे। साथ ही 'मुद्राराक्षस' 'मृच्छकटिक', 'वेणीसंहार' और दूसरे कितने ही नाटकों का भाषान्तर हो चुका और होता जा रहा था। जर्मन, हिन्दी, मराठी, बंगाली नाटकों का भी अनुवाद हुआ, किन्तु मौलिक नाटक साहित्य कोई ऐसा नहीं जिस पर गुजराती साहित्य को गर्व हो।

स्वतन्त्र मौलिक कृतियों में केवल मणिलाल के 'कांता' के बाद रमणभाई का 'राईनु पर्वत' तथा न्हानालाल का 'जयाजयन्त' ही आज तक के गुजराती नाटक साहित्य में उत्कृष्ट हैं। वैसे आज भी दिन प्रति दिन गुजराती में नाटक लिखे जा रहे हैं। किन्तु अधिक लोकप्रिय नहीं हैं।

इधर चन्द्रवदन मेहता का 'आगगाड़ी' अधिक सुन्दर है।

इन नये लेखकों से आशा है कि भविष्य में वे अवश्य ही गुजराती साहित्य की इस कमी को पूर्ण करेंगे।

प्रश्न ६—गुजराती साहित्य व्यापक साहित्य है। इस विषय पर अपना विचार प्रगट करो।

उत्तर—किसी भी देश अथवा किसी भी भाषा का साहित्य तभी व्यापक साहित्य कहा जा सकता है जब कि उसमें लोकहित की संपूर्ण भावना हो। क्योंकि साहित्य इतना ऊंचा होता है कि साधारण जनता के लिए उसके भावों को समझना तथा वहां तक पहुंचना अति कठिन है। ऐसे साहित्य बहुत ही कम होते हैं [illegible] साधारण जनसमाज में [illegible] सके। व्यापक साहित्य के [illegible]

अपनी प्रतिष्ठा के साथ ही साथ प्रत्येक मानव के हृदय में भी व्यापक हो। ऐसे साहित्य में गोवर्धनराय, मणिलाल आनन्द-शङ्कर ध्रुव, न्हानालाल इत्यादि का साहित्य आ जाता है। इसी प्रकार मुंशी तथा रमणलाल की नवलकथाएँ धूमकेतु की नवलिकाएं, खबरदार, बोटादकर, नरसिंहराव वगैरह का काव्य बहुत ही सुन्दर तथा लोक प्रिय है। और समाज में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

इसी प्रकार कुछ ऐसा भी साहित्य होता है जो शिक्षित अशिक्षित तथा सभ्य-असभ्य दोनों समुदायों में प्रिय होता है। ऐसे लेखक तथा कवियों में पुराने लोग आजाते हैं।

साहित्य की व्यापकता प्रचार द्वारा ही हो सकती है। और इसका सबसे बड़ा श्रेय नव-जीवन को है। महात्माजी ने इसे मासिक से साप्ताहिक बनाकर यह कार्य किया। महात्मा जी की पुस्तकें 'हिन्द स्वराज्य' 'दक्षिण अफ्रीका ना सत्याग्रह नो इतिहास' 'आत्मकथा' इत्यादि व्यापक साहित्य का नमूना हैं। बाद में हरिजन में निकले स्वतंत्र लेख भाषा की निर्मलता, विचारों का वेग तथा सत्यता से और भी व्यापक हो गये और सम्पूर्ण देश में अलग अलग भाषाओं में रूपान्तर हो देश व्यापी बन गये। महात्मा जी की कलम में भावपूर्ण शक्ति है, ऊंचा से ऊंचा साहित्य उनकी लेखनी से लोहा नहीं ले सकता।

गाँधी जी ने अपने व्यक्तित्व तथा लेखन शक्ति से कितने ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इसी प्रकार [illegible] जी का जीवन साहित्य 'स्मरण यात्रा' 'ओतराती [illegible] नाटक लिखना आरम्भ [illegible] क्योंकि उनकी साहित्यिक दृष्टि लोक प्रिय न हो सकी। हां, रणछोड़ भाई के नाटक 'ललिता दुख दर्शक' को अवश्य लोकप्रियता मिली थी।

इसे हम नहीं भूल सकते कि नाटक जीवन का एक आवश्यक तथा आकर्षक अंग है। ये नाटक इनके सफल न हो सके

इनके उपरान्त गांधी जी के रंग में रंगे विचारों के लेखक महादेव हरिभाई देसाई की गणना है। इनकी साहित्यिक स्वतंत्र कृतियाँ बहुत ही थोड़ी हैं। भाषान्तर करने में देसाई जी बहुत सफल हुए हैं। इन्होंने जो गांधी जी की तथा गुजराती की सेवा की है वह बेजोड़ है।

गांधी जी के सरल जीवन तथा आश्रम जीवन में कितने ही नये युवकों को प्रेरणा मिली है। मेघाणी के जीवन विकास में गांधी जी ने प्राण भर दिए हैं। गांधी जी, कालेलकर तथा मेघाणी ने जो साहित्य लिखा है, उसे कोई शक्ति सर्व व्यापकता से दूर नहीं कर सकती है।

गांधी जी के पवित्र विचार तथा भावों को ग्राम जीवन तथा युवक हृदयों में भरने का प्रयास कुछ 'सोपान' ने किया है। सोपान ने 'अंतरनी वातो', 'संजीवनी', 'जागता रहो जी' तथा प्रायश्चित वगैरह पुस्तकें गांधी वातावरण को लेकर लिखी हैं। नवलचन्द का 'स्नातक गामडु' प्रत्येक युवक विद्यार्थी को पढ़ना चाहिए क्योंकि ऐसी पुस्तकों के कारण ही देश भर में व्यापक साहित्य लाभ पहुँचा सकता है।

इधर अब भी चन्द्रभाई भट्ट की 'भाठी नों जाय', तथा धनसुख ओझा की 'वैज्ञानिक समाजवाद', पढ़ने योग्य व्यापक साहित्य में गिनी जाने योग्य पुस्तकें हैं।

प्रश्न ७—गुजराती साहित्य नी वर्तमान परिस्थिति पर लेख लिखो।

उत्तर—गांधी जी के स्वर्गवास के बाद ७०-८० वर्ष का कोई ऐसा लेखक नहीं रहा जो गुजराती साहित्य की दृष्टि उतना ६० से ७० वर्ष वाले गोवर्धनराम [illegible], [illegible] इत्यादि

मुंशी हंसा मेहता, ज्योत्स्ना शुक्ल, जयमन पाठक जी इत्यादि चालीस और पचास की उम्र में हैं किन्तु कोई आशा जनक साहित्य नहीं दे पा रहे हैं। इन लोगों की पुनीत अमर सेवा के उपरान्त अब यह आशा है कि युवक नये लेखक अवश्य साहित्य वृद्धि करेंगे। क्योंकि काव्य क्षेत्र में 'सुन्दरम्, 'उमा शंकर जोशी', 'बेटाई', 'स्नेह रश्मि' तथा मनसुखलाल झवेरी' के अर्घ्य तो साहित्य देव के चरणों में चढ़ चुके हैं। सुन्दरम् तथा उमाशंकर जोशी के काव्य तो बहुत ही अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं तथा हमें आशा है कि ये साहित्य क्षेत्र में अपना ऊंचा स्थान निश्चित कर लेंगे। सुन्दरम् की 'काव्य मंगला' 'वसुधा' तथा 'कर्ण' तो अधिक प्रिय है। उमाशंकर जोशी ने 'विश्व शान्ति' ने साहित्यमें खूब रसभरा है। इन तरुण हृदयों में साहित्य के लिए प्रेम, उत्साह, लगन तथा उत्तेजना है। काव्य ही नहीं वरन् गद्य (नवलिका तथा नवलकथा) की ओर भी पूर्ण रूप से इनका ध्यान है। 'विश्व शान्ति' के उपरान्त उमा-शंकर के 'गंगोत्री' काव्य ने खूब आशा तथा संतोष जनक साहित्य दिया है। 'ज्योतिरेखा' से स्पष्ट हो जाता है कि सुन्दरम् का गाँधी जी के प्रभाव की ओर अधिक आकर्षण है, उसमें देश-प्रेम भरा है। मनसुखलाल झवेरी की 'अराधना' के कारण उनके व्यक्तित्व की छाप अच्छी जमती है। सुन्दरम्, उमाशंकर जोशी तथा मेघाणी की दुखी जनता तथा दलितवर्ग पर होने वाले अत्याचारों के लिए अधिक दुख है।

इन लेखकों के अतिरिक्त भी कितने ही नये लेखक साहित्य को अपना अर्घ्य चढ़ा रहे हैं। गुजरात साहित्य को आशा है कि इन नये लेखकों में से भविष्य में विद्वान कवि या साहित्या-चार्य प्रगट होंगे।

स्नेहरश्मि, रमण वकील, इन्दुलाल गाँधी, मानुशंकर व्यास, कोलक पाराशर्य, प्रह्लाद पारेख, प्रह्लाद पाठक, रमणि

अगरवाला, पतील, मुरली, नन्दकुमार पाठक और रतुभाई देसाई इत्यादि लोगों के काव्य अधिक देखने योग्य हैं। वर्तमान समय में काव्य की स्थिति अवश्य संतोष जनक है, नवलिका तथा नवल कथा की ओर केवल पन्नालाल पटेल का ही ध्यान है। लेकिन दूसरे विषयों पर अभी तक कोई ग्रन्थ नहीं लिखे गये जो ख्याति प्राप्त करते।

इधर 'गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी' ने पौराणिक कथा कोश बनाया किन्तु वह ऐसा नहीं है कि सामान्य जनता उससे लाभ उठा सके। लेकिन गुजराती में सब कुछ होते हुए भी अभी इसका साहित्य दूसरी भाषाओं की बराबरी कर सके ऐसा नहीं है। गुजराती में राजनीति, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विषयों के साहित्य की बहुत ही आवश्यकता है।

न्हानालाल जैसे साहित्य सेवी के उपरान्त ऐसा मालूम हो रहा है मानो गुजराती साहित्य का सूर्य डूब गया हो, वैसे अब भी सब विद्वान कवि लेखक तथा कुछ नये कहानीकार साहित्य के अंगों की सेवा कर रहे हैं।

दिन प्रति-दिन हमें नये लेखकों से बड़ी-बड़ी सेवा करने की आशा है और उस दिन के देखने की लगन है जिस दिन गुजराती साहित्य प्रत्येक भाषा के सामने होड़ लेने को खड़ा होगा।

———

जिससे मनुष्य का सम्बन्ध नहीं होता कम नहीं होती। जैसे पशु-पक्षी, वृक्ष-पत्ते, धूप छाह और बरसात के अनुभव।

जिसका जीवन शहर के बाहर प्रकृति सौन्दर्य देखने में बीता हो और जिसे बारह महीने इधर-उधर मुसाफिरी में घूमना पड़ता हो उसे अगर जेल की चाहर दीवारी में प्रकृति माता का आनंद नहीं मिले तो इससे अधिक दुख की बात क्या हो? मेरी निगाह में जेल का महत्त्व अनुभव की दृष्टि से जितना है उतना ही महत्त्व वहाँ की रमणीयता का है। इन अनुभवों में ईर्षा द्वेष कुछ नहीं है, और हृदय को देखकर इसमें पूरी २ खुराक मिलती है।

फरवरी सन् १९२३ मंगलवार के दिन प्रवेश विधिपूर्ण होगई और मैं यूरोपियन वार्ड की एक कोठरी का मालिक होगया। कोठरी में दो जालियां लगी थीं जिनका कार्य केवल हवा को अन्दर लाना था। धूप का साधन केवल दरवाजे की सींकचे थे। बाहर आंगन में १८ नीम के पेड तीन लाइनो में खड़े थे। पतझड़ ऋतु होने के कारण सुबह से शाम तक पीले पत्ते गिरा ही करते थे। धीरे २ आठ दिन के अन्दर ही सब पत्ते गिर गये और पेड़ बिल्कुल नग्न होगये। इस स्थिति को देखकर मुझे अधिक आनन्द नहीं हुआ, मैंने कहा "कथम प्रथमेव क्षपणक।"

दावड़े बापा

हमारे मकान के दाईं ओर दावड़े बापाके दो आम के, दो नीम के और एक जामुन का पेड था। बापा उनकी इस प्रकार रक्षा करते थे मानों उनके बालक हों। जब उनके हृदय में उन पेड़ों के लिए प्रेम आता, तो वे अपनी कानड़ी भाषा में उनसे बातें करते। मेरे साथ उनकी बातें करते वे थकते ही नहीं। भोजन करने के पश्चात इन पेड़ों के नीचे बैठकर अपने बर्तन मांजते। जस्त के इन बर्तनों को मांजने की भी एक कला होती है। मुनि जय विजय

जी इस कला में विशेष निपुण थे, कुछ मेरी लगन से तथा कुछ जबरदस्ती से इन्होंने मुझे इसकी दीक्षा दी। दूसरे दिन वे जेल में चले गये इसलिये मैं ही केवल इसी दीक्षा को लेने का भाग्यशाली हुआ। ये बर्तन मांजना देश-सेवक का समान है। देश सेवक भी रोज सावधान नहीं रहे तो इनमें कुछ मैल जम जाता है और कुछ खटाई का साथ इसी समय स्नेह प्रयोग करना पड़ता है। तभी इनकी चमक रहती है। सायंकाल ६ बजे हम अपनी कोठरी में बन्द हो जाते, खट्-खट् आवाज करते ताले सरकार को विश्वास रहे इसलिए बन्द हो जाते कि रात को कैदी भग न जाये? रातमें आधा २ घन्टे बाद आते और देखते कि कैदी जग तो नहीं रहा है, अपनी जगह पर तो है! क्योंकि उन्हें ताले का क्या विश्वास? जेलमें घुसने के बाद ही मैंने ऊघने का कार्य ठीक समझा। चौदह घन्टे रोज सोकर आठ दिन बाद नये अनुभव के लिए तैयार हुआ।

चींटियों की पंक्ति

एक दिन दोपहर को मैंने अपने कमरे के सामने से जाती हुई एक चींटियों की पंक्ति देखी। उनके पीछे पीछे मैं चला. कितनी ही तो मजदूरी करने वाली मजदूर थीं, कितनी ही आस-पास दौड़ने वाली व्यवस्थापक थीं, कितनी ही ब्याज के सहारे जीने

उसका बोझ बटा लेती। पर बोझ किस प्रकार खींचना इसके लिए वे शीघ्र ही एक मत नहीं होती और खींचा तानी करती उसके आस-पास घूमतीं। फिर एकमत होने पर ढकेलती हुई उतावली होकर ले जातीं।

इन चींटियों की पंक्ति कहाँ से आती है, यह देखने की मेरी अधिक इच्छा हुई, और मैं धीरे २ प्रयत्न करने लगा। पीछे की तरफ एक चबूतरे के नीचे एक दर था उसी में से इनकी पंक्तियाँ निकलती थीं, पास में ही एक लाल मिट्टी का एक ढेर था जो इनका श्मशान था। मुर्दों को अन्दर से लाती और इसमें फेंक देतीं। इन चींटियों की समाज रचना कैसी है? इनके चुंगी के नियम कैसे हैं। क्यों इस प्रकार के श्मशान की रचना करती हैं? इत्यादि बातें मन में आईं। दूसरे कौन से जानवरों में श्मशान बनाने की रीति है यह जानने की इच्छा भी हुई। चींटी तो श्मशान बनाते ही हैं। मधुमक्खियां भी बनाती होंगी। इत्यादि बातों का मन में विचार आया।

कुहरे में चक्कर—पतझड़ ऋतु थी फिर भी गर्मी नहीं थी। दाबडे बापा को रोज गरम पानी से न्हाने का अधिकार मिला था। सुबह कुहरा फैल जाता। दयाल जी भाई जब से हमारे पास आये सुबह कुहरे में घूमना पड़ता। कभी कभी तो आसमान, मकान, दीवारें भी नहीं दीखतीं तब मुझे बचपन की वेनगाम से सॉवलवाड़ी जाते आगोली घाट पर कितनी ही बार जो आनन्द आया था उसकी याद आई। कुहरे में सीधे जल्दी चलने की उमंग बढ़ती है, और अगर सिर खुला हो तो और भी आनन्द आता है, क्योंकि सिर में, नाक में कुहरा घुसता और जाडा भी खूब लगता। कभी ऐसा मालूम होता मानों नाक जकड़ गई। जिसने यह अनुभव जाना है उसे ही

इसका आनन्द मिलता है। कुहरे में दिखते अस्पष्ट चित्र देखकर केशवसुत की कविता याद आ जाती।

कवित्व्या दृश्यी उज्ज्वलता आणिक मिळती मधुरता।
बीच स्थिति ही भासत हे सृष्टि कवयित्री च दिसे॥

ध्यान और तपस्या से जो मुनियों को तत्वज्ञान के स्पष्ट दर्शन होते हैं, उसका सहज स्पष्ट दर्शन कवियों को होता है। इसी से केशवसुत ने कुहरे के प्रभातकाल की उपमा कवि उर से दी है।

दुर्घटना का राज्य—एक दिन दोपहर के समय ग्वाल जी के पाँव के नीचे एक चींटा कुचल गया, उन्हें तो पता भी नहीं लगा पर मेरे मन में कुछ कुछ होने लगा। बिचारा चींटा कैसे मर गया, इसने क्या पाप किए थे? दुनियां में नीति का साम्राज्य है या अकस्मात् का। बिना अपराध किये मौत कैसे आती है? इसी समय नया विचार आया कि अच्छा हुआ, उसे इस जन्म से उद्धार मिल गया। प्राणी मात्र मौत से डरता है। जो मौत से भागता है वह योग्य है या अयोग्य? मौत से भाग जाना प्राणी मात्र का स्वभाव है। यह स्वभाव योग्य है अथवा अज्ञान पूर्ण यह कौन कह सकता है? फिर विचार आया मौत आने वाली है, यह जानकर जो मौत का साक्षात्कार होता है उससे वंचित रहना दुर्भाग्य है। कौन कह सकता है कि मौत में मजा नहीं है। यदि मौत में आनन्द आता है तो मौत से क्यों नहीं? फाँसी पर जाने वाले आदमी को आठ दिन पहले सूचना दे दी जाती है इन दिनों में वह कितनी परलोक की अच्छी तैयारी कर सकता है"

— ——

वाले कैदियों के लिए आठ कमरे थे। साबरमती जेल मे यह स्थान सबसे अच्छा है। स्वामी, लालजी भाई, प्राणशंकर भट्ट इत्यादि को यहीं रखा। स्वामीजी गांधी जी वाले कमरे में ही रहते थे। मुझे कदाचित् पूरे समय न रखें इसलिए आग्रहपूर्वक गांधीजी वाला कमरा मुझे रहने को दिया। ऊँची दीवाल के उस पार औरतों का स्थान था। फांसी के इस स्थान पर आकर मैं पछताया। क्योंकि दिन भर उस पार औरतें कपड़े धोतीं, इनके बच्चे रोते या औरतें आपस में झगडा करतीं। मैं जेल की मुसीबतों को सहने के लिए तैयार था परन्तु यह कलह मेरे लिए सहना मुश्किल था। पर दो चार दिन में कान अभ्यासी हो गये या कुछ दिनों मे नई औरतें पुरानी हो गईं, इससे झगडा कुछ शान्त हो गया।

फांसी वाले कमरेमें आते ही दो बिल्लियो से दोस्ती हुई। एकका नाम फौजदार तथा दूसरे का नाम हीरा था। इन्हे एक छटांक दूध रोज मिलने की व्यवस्था थी। यह दूध देने के लिए जेलर की आज्ञा थी। ऐसी छोटी छोटी बातों की जेलमें व्यक्तिगत व्यवस्था होती है क्योंकि कुछ इस लिए कि कैदी नौकरों के आदमी से हो जाते हैं। सुबह शाम को जब खाना आता तो उनके लिए रोटी के दो-चार टुकड़े दूध मे डालकर कोने में रख [illegible] नासी तो वे वार्डर के पग पर नाक [illegible] को धैर्य-

हमारे पास आय [illegible]

आसमान, मकान, दीवारें भी नहीं दीखतीं तब मुझे बचपन की वेंगुर्ला से सावंतवाडी जाते आंबोली घाट पर कितनी ही बार जो आनन्द आया था उसकी याद आई। कुहरे में सीधे जल्दी चलने की उमंग बढती है, और अगर सिर खुला हो तो और भी आनन्द आता है, क्योंकि सिर में, नाक में कुहरा घुमता और जाडा भी खूब लगता। कभी ऐसा मालूम होता मानों नाक जकड़ गई। जिसने यह अनुभव जाना है उसे ही

में मिर्च के पौधे लगा लिए थे, जिनमें से रोज एक दो मिर्च मिल जाती थीं। मुझे भी कर्नाटकी समझकर उन्होंने मिर्च खाने का आग्रह किया और जब मैंने कहा कि मैं नहीं खाता हूँ तो वे बोले- 'तब तो पूरे गुजराती बन गये।' अरे! जो मिर्च नहीं खाये वह कर्नाटकी कैसा? मैंने इसे मानकर छुट्टी लेली।

तदुपरान्त होली के दिन आये, बापा पीछे के द्वार से खेत में जाते और लकड़ियों को बांध लाते। होली के दिन तक आंगन में लकड़ियों का अच्छा ढेर हो गया। होली के दिन सुपरिन्टेन्डेन्ट आया, बापा ने रीतिपूर्वक होली जलाई और रामधुनि के साथ प्रदक्षिणा की और कारावास में भी हिन्दू धर्म को जीता जागता रखा।

चन्द्रदर्शन—जेल के नये नये अनुभवों में मैं यह बात तो भूल ही गया था कि बारह घण्टे कोठरी में बन्द होकर हम चांद-तारों को देख नहीं सकते थे। हमारी कोठरी पर तो स्वच्छ चांदनी पड़ती थी। परन्तु हमें चन्द्र के दर्शन कहाँ से होवें। इतने ही में स्वामी जी ने एक युक्ति बताई। उसको कृपालजी भाई ने बताई थी। हमारे पास हजामत का सामान था उसमें एक दर्पण था। उसे हम निकाल कर ऊपर सींखचों में से बाहर करते, उसमें चन्द्र-बिम्ब दिखता, इसमें हमें खूब आनन्द मिलता था। दूसरे ही दिन से दरवाजे से मैंने आनन्द को निरखने का बहाना। आनन्द मेरा पुराना दोस्त और बालपन का साथी था उस जेल में सहृदय हो गया। परन्तु यह बहुत अधिक समय [illegible] रहा बाद [illegible] उसे निकाला और [illegible] हो जाना।

गप्पें मारते या कम्बल पर लोट लगाया करते। आँगन में एक पीपल का छोटा सुन्दर पेड था। दूसरा एक बडा नीम का था उसके पत्तों के बीच से तारे गिनने में खूब आनन्द आता। यह आनन्द मिल ही रहा था कि मुझे उपवास करने की सजा सुनाई गई और कैदी लोग जिसे जेल का पोर्ट ब्लेअर (काला-पानी) कहते हैं, उस चक्कर नम्बर ४ में मेरी बदली हुई। खुली हवा, ताराओं का दर्शन और स्वामी जी का सहवास इन तीन टॉनिकों से मैं इतना स्वस्थ होगया कि मैंने डाक्टर को लिखा कि अब मैं सजा भुगतने के योग्य हो गया हूँ। मुझे अपनी सजा के स्थान पर लेजाने मे अब कोई हानि की बात नहीं। सत्य ही खुली हवा कैदियों के स्वास्थ्य के लिए सजीवनी है।

(३)

छोटा चक्कर नं० ४—छोटा चक्कर नम्बर ४ में मेरीसजा आरम्भ हुई। मेरे पास से मेरी पुस्तकें, लिखने के कागज, चौक कलम- पेंसिल इत्यादि सभी छीन लिए गये। केवल एक धार्मिक ग्रथ रहने दिया, उसमें निशान लगाने को मैंने पेंसिल माँगी किन्तु नहीं मिली, अनेक प्रकार से मुझे परेशान करने की तथा अपमानित करने की युक्तियाँ सोची। जिनके हाथों में मैंने अपना मान ही नहीं दिया उनके हाथों मेरा अपमान क्या ?

इन सम्पूर्ण सजाओं से, परेशानियों के कारण मेरा ध्यान प्रकृति की ओर अधिक जाने लगा। मैं दूसरे कैदियों के साथ बातें न कर सकूं इसलिए मुझे एक दम कोने की कोठरी मिली थी। कोठरी की बाई ओर खूब ऊची एक जाली थी उसमें से प्रकाश आता तथा जब चन्द्रमा पश्चिम में होता तब वह इस जाली में से दर्शन देता। जब चन्द्र का दर्शन प्रत्यक्ष नहीं होता तो मैं शीशा दीवाल पर पड़ते हुए प्रकाश में ऊचा कर

उसमें चन्द्र दर्शन करता। रात को इस खिड़की में से दो चार तारे दिखते, व कौन से तारे हैं यह निश्चय करना मुश्किल था। परन्तु यह निश्चय करने में आनन्द आता। अगर पूरा आकाश आँखों के सम्मुख हो तो दिशा का ज्ञान करना सरल है और तारों के क्रम को जोड़ कर यह कह सकते हैं कि कौन सा तारा है। मेरी तारों के साथ पुरानी पहचान होने से मैंने पहले ही दिन पुनर्वसु के दो तारे पहचान लिए और सारी रात खिड़की में से एक के बाद एक तारे को देखने लगा।

परन्तु केवल तारों का आनन्द लेना मेरे रात भर जगने का कारण नहीं था। छोटे चक्कर नं० ४ में कोठरियों का फर्श सिमेंट का था, इस कारण दीवालों में खटमलों की एक फौज रहती थी, अपनी कोठरी के रोजाना के दुख और परिश्रम से शिथिल पड़े कैदियों को रोज सताया करते, और कोने में मेरे जैसे नये आदमी पर धावा किया करते। इनके साथी चन्द्रो (लालचींटे) से कोठरी सूनी नहीं थी वे ऊपर से से रात को सोते समय गिरते और मेरे बालों में रेंगते रहते, इन्हें मेरे सिर के बाल ही अधिक प्रिय थे, क्योंकि थोड़ी सी गँध लगते कि वे काटना प्रारम्भ कर देते।

स्वागत अगर ठीक प्रकारसे नहीं हुआ तो बाहर का आनन्द

वड़ी वहन हैं। सब एक जैसी देखने में अवश्य किन्तु असुविधाओं में इनसे बड़ी, उनमें ऊपर की जाली भी नहीं मिलेगी। फिर चन्द्र और पुनर्वसु का दर्शन कहाँ से होगा ? मैंने कहा सामने एक पूरी लाइन खाली पड़ी है, मुझे उसमें सोने दो। यह नहीं हो सकता क्योंकि तुम्हें अधिक हवा और सोने का आराम मिलेगा और सजा भुगतने वाले कैदी को इतनी सुविधा नहीं दी जा सकती। बीच में ही एक अंग्रेजी डिप्टी ने कहा।

मैंने तुरन्त ही अपना कार्य क्रम बदल डाला। रात भर जगना और सुबह चार घन्टे चबूतरे पर नींद निकाल लेना। एक दिन डाक्टर तबियत का हाल पूछने आया। मैंने कहा-रात को नींद नहीं आती इसलिए दिन में सोता हूँ। बिचारा डाक्टर क्या करता उसने मुझे नींद आने की दवा देदी। जिसमें ब्रोमाइड ऑफ पोटेशियम तथा अन्य दवाएं थीं। मैं ब्रोमाइड का असर जानता था। लाचार हो मैंने बीसेक दिन दवा ली, और फिर एक दिन फावड़ा-कुदाली के लिए प्रार्थना की। मेरी इच्छा थी कि अपनी कोठरी की जमीन को खोद टीप कर तैयार करलू, और दीवालों को फिनाईल से धो डालूं। किन्तु फावड़े कुदाली तो बड़े शस्त्र हैं, वे मेरे जैसे बदमाश को कैसे मिल सकते, इतने ही में हमारी देख रेख को एक बलूची रखा गया, यह भरूच जिले में डाका डालने के गुनाह से आठ नौ वर्ष के लिए आया था। उसने दो चार कैदियों को बुलाकर जमीन टीपवा दी, उस डामर (कोलतार) मांग लिया था, जिससे जमीन लीप दी। वह सूखे तब तक क्या करूं ? इसके लिए पीछे की एक कोठरी में रहना पसन्द किया और जेल के अमलदारों ने भी मुझे आज्ञा देदी। मुझे यह कोठरी इतनी पसन्द आई कि मैंने लौटना पसन्द नहीं किया।

मेरी इस नई कोठरी के बराबर पापा (पारसी सुपरिन्टेन्डेन्ट) के द्वारा नष्ट किया हुआ बापा का बगीचा था। बापा को सजा देने के हेतु उसने इस बगीचे को नष्ट किया था, किन्तु फिर भी

दो चार बागामागी के पौधे बच गये थे, उन्हें मैं पानी देता था। जब पहला लगाया हुआ पौधा मुझे उत्तेजित करता तब में साफ मना कर देता। मैंने एक दिन कह दिया, कि मैं बगीचा पालता हूँ और दूसरे दिन तुम उसे तोड़ दो तो यह आपका शैतानी आनन्द म सहन नहीं कर सकता।

कर्म कांडी कबूतर

अब गर्मी बड़ी जोर से प्रारम्भ हुई, आस पास का घास सूख गया। कौए, फाख्ता, गिलहरी इत्यादि पशु-पक्षी पानी के लिए तरसने लगे और इधर उधर आकर पानी की तलाश करने लगे। बन्दर आस पास से आकर हमारे हौज पर पानी पीने लगे, कबूतर कर्म कांडी ब्राह्मण की तरह दिन भर पानी में नहाने लगे। मेरे पास मिट्टी की एक कूंडी थी, उसे भर कर नीम के नीचे रख देता। दिन भर, गिलहरियां, कौए, कबूतर आदि आते और ले ले ले करते हुए आकाश को गुंजाने वाला बैरागी

कि वह एक पाँव पर ही खडा रहे। क्योंकि वह बगुला नहीं था। बगुला एक पाँव पर खड़ा रह सकता है। हालाँ कि दोनों में सफेद काले के अतिरिक्त कोई अधिक अन्तर नहीं था। एकाध मिनिट खडा रहता कि थक कर गिर जाता। फिर उठता, फिर गिरता। यह उसका क्रम चलता रहता। यह कौआ लगातार चार - पाँच दिन तक आया, फिर कहाँ चला गया यह पता नहीं।

खटमल यज्ञ

नया सुपरिन्टेंडेन्ट आया। वह डाक्टर भी था। उसने मेरी कटोरी देखकर पूछा कि किस बीमारी की दवा लेते हो? मैंने हँस कर कहा यह तो खटमल और कीडों की दवा है। जो कैदी की बात को सच मान ले वह सुपरिन्टेन्डेन्ट कैसा? उसने धूर्त की सी निगाह से देखते हुए कहा अब काडे जब तुम्हें काटे तब एकाध पकड कर दिखाना। मैंने फिर हँसी के साथ उत्तर दिया-'कुछ कष्ट उठावें तो अभी दिखाऊ, यह कह कर अपनी पेटी (बकसा) खाली और खोलते ही दो-चार कीड़े उनके स्वागत को दौड पडे। मैंने साहब बहादुर से कहा यह तो आज की शिकार है। कल ही मैंने बक्से को धूप में रखा था। उन्होंने हुक्म दिया "अभी ही मिट्टी के तेल का स्टोव ले आओ और जमीन दीवाल सब जला दो।

तीसरे या चौथे दिन बत्ती आई और कार्य आरम्भ हुआ। दीवाल के कोने का चूना वैसे ही फट रहा था। बत्ती जली और खटमलों के लम्बे देह जमीन पर ढेर होने लगे यह संहार वास्तव में महान था। आठ दिन उपरान्त फिर मेजर साहब ने पूछा- 'अब कैसे हैं?' मैंने कहा एक फौज तो समाप्त हुई किन्तु बन्दो ने बत्ती की परवाह न कर बाहर अपना अड्डा जमा लिया। उसी समय सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कमेटी बुलाई और निर्णय

किया कि छप्परों में कबूतर बैठते हैं और उनकी बीट वहां गिरती है, जिससे यह कोढ़ पैदा होते हैं। उसी समय आज्ञा हुई कि अन्दर कबूतर न बैठ सकें इसके लिए सब में सीमेंट लगाओ।

यहाँ तक सब ठीक था, किन्तु इसके बाद जो काण्ड हुआ उससे मुझे बहुत क्लेश हुआ। एक दिन प्रातः वह नये साहब अपनी बन्दूक लेकर आये और कबूतरों को मारना आरम्भ किया मेरे पास आकर कहने लगे कि इस बला की जड़ ही काट डालूं, बहुत गन्दा करते हैं। उनका विचार था कि मैं खुश होऊंगा पर मैंने उदास होकर उनकी तरफ देखा और मेरे मुंह से एक हाय निकल गई। साहब बहादुर को ध्यान आया कि यह तो दया धर्म को मानने वाला हिन्दू है। उस दिन कबूतरों के घर में हाहा-कार मचा था और सुपरिण्टेण्डेण्ट के घर पर दावत थी।

ये कबूतर कितने बेवकूफ थे कि दूसरे दिन उतने के उतने ही आकर छप्पर पर बैठ गये। हम उनको उड़ाने का खूब प्रयत्न करते, पर वे क्यों जाने लगे? उनमें देश प्रेम होता है। इन कबूतरों में एक सफेद अथवा चितकबरा था, वह एक बार पाला हुआ था, वह नीचे आया और उसने एक आश्रय स्थान ढूंढा। पुलिस ने उसके परों को काट डाला जिससे वह उड़ न सके। आखिर [illegible] के एक मित्र थे उन्होंने इस कबूतर को अपने अधिकार में ले लिया और व्यक्तिगत रूप से उसके लिए ज्वार मंगा उसके भोजन का प्रबन्ध किया और [illegible] सब [illegible] गया। वह कबूतर जब तक हमारे पास था, [illegible] पर बैठता और [illegible] अपने हाथ से [illegible] करता।

[illegible] दिनों [illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

गोदी भर लेते और वहाँ नये फूलों का गलीचा बिछ जाता। हमें नीम के नीचे घूमने में खूब आनन्द आता और कहते कि सरकार को क्या पता कि हम कितना आनन्द लूट रहे हैं। आखिर फूलों की यह ऋतु विदा हुई और निंबोली अपने आगमन की तैयारी करने लगी। इस वर्ष वर्षा रास्ता भूलकर कहीं दूसरी ओर चली गई थी। गर्मी असह्य हो गई। रात को कोठरी में जाने से अच्छा तो बिस्कुट की भट्ठी में जाना होता। भाषण वालों ने खूब तर्क किया, किन्तु बाहर सोने की आज्ञा नहीं मिली। जोन्स साहब होते तो आज्ञा मिल जाती किन्तु ये तो डॉइलसाहब थे। आखिर जब झम्मरमल एक दो बार रात में बेहोश हुए तब कहीं पूना से बाहर सोने की आज्ञा मगाई गई। हम लोग खूब पानी से जमीन ठण्डी करते, शाम को बैठकर प्रार्थना करते और जब पानी की भाप निकल जाती तब बिस्तर बिछाते। इतने पुरुषार्थ से किये बिस्तर में मैं अकेला सोऊँ यह ईश्वर को कैसे अच्छा लगे। एक गोल मटोल पुष्ट मेंढक मेरे बिस्तर में प्रवेश करता और मेरी गर्दन क पास आकर अपने भीने कलेवर का शीतल स्पर्श कराता।

मुझे इस स्पर्श स अधिक सोने की इच्छा थी, इसलिए अपने बिस्तर का स्थान बदला, किन्तु भाई साहब वहाँ भी आ पहुँचे, तब मैंने सोचा कि इन्हें सन् १८१८ का नियम बताना चाहिए। इसलिए एक दिन रूमाल में लपेटकर उन्हें दीवाल की उस ओर फेंक कर उनके मधुर स्पर्श से मुक्ति पाई। एक दिन रात को जब हम कोठरी में बन्द होते थे दस ग्यारह बजे के करीब एक गिलहरी की चीख सुनाई दी और थोड़ी ही देर में ऐसा मालूम हुआ कि कोई उसे खा रहा है। आखिर बिल्ली की जाति का आनन्दो [illegible] निश्चय कर लिया कि गिलहरी बिल्ली [illegible] [illegible] के [illegible] मुक्ति निद्रा कैसे [illegible]

[illegible]

लिया। उसी समय सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कमेटी बुलाई और निर्णय

अन्तिम शिक्षा है। किन्तु भूखी बिल्ली को कितना आनन्द आया होगा? भला उसे ऐसा भोजन कहाँ मिलता है? बिल्ली ने ईश्वर को कितने आशीष दिए होंगे।

सुबह किसी घर के बालक जेल देखने आये, फूल जैसे नन्हे बच्चों का जेल में दर्शन होने का आनन्द बिना अनुभव के नहीं आ सकता। पक्के बदमाश ऐसे बालकों को देखकर सौम्य हो जाते हैं और दो चार क्षण को उनसे मिठास और प्यार से बोलते हैं।

उस दिन एक छबरा कुत्ता जेल में आ गया, पूरे वर्ष में हमने यही कुत्ता देखा था।

मानव बुद्धि का दिवाला

जिस दिन बिल्ली ने गिलहरी का भोजन किया, उसी दिन एक जवान आदमी को फाँसी लगी। मैंने सोचा यह कैसा न्याय है? हम स्टोव घरों से खटमल मारते हैं, बिल्ली गिलहरी को खा जाती है और न्याय देवता एक युवक अपराधी की बलि ले लेते हैं। इसका अर्थ क्या? क्या समाज को इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा। मॅजिस्ट्रेट, जज, डाक्टर, सुपरिन्टेन्डेन्ट, जेलर, डिप्टी जेलर सब एकत्रित हुए। वेतन न मिलने पर तीन रुपये में ही गुजर करने वाले दस-बीस सिपाही एकत्रित हुए। एक ने कागज पढ़कर सुनाया, दूसरे ने ईश्वर का नाम लिया, और सब ने मिलकर [illegible] एक मनुष्य का खून किया। जिसका परदा पड़ा और आधुनिक दुनिया में से एक आदमी कम हो गया। [illegible] ने [illegible] किया। इसके माने—मनुष्य जाति ने बुद्धि का दिवाला निकाला है।

[illegible]

इस ससार से विदा दी और उसके रक्षक को बेवकूफ बनाया। आज जब सुपरिण्टेण्डेण्ट आयगा तब लज्जित होगा ऐसा मैंने सोचा किन्तु उसके लिए यह पहला प्रसग नहीं था।

कानखजूरा

एक दिन पौ फटने के समय प्रात मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बिस्तर में कुछ काला सा हिल रहा है। आँखों में नींद की खुमारी थी इससे मैंने सोचा कि भ्रम है। जब थोड़ा प्रकाश हुआ तो मैंने देखा कि एक बड़ा कानखजूरा (कातर) बिस्तर की बाजू से दीवाल की ओर भाग रहा है। आध घण्टे उपरान्त ताला खटका, द्वार खुले। इतने में मैंने झाड़ू लाकर उसे कोठरी के बाहर फेंक दिया। पाँच वर्ष पहले अगर कातर मेरी निगाह पड़ती तो मैं मार डालता, परन्तु अब गुजरात में आने से और अहिंसा का पुजारी होने से उसे मारने की इच्छा नहीं हुई। मैंने तो कोठरी के बाहर फेंक दिया किन्तु मेरे पड़ौसी इस्माइल ने उसे झाड़ू से मार डाला और मुझ से कहा--"काका साहेब, आप जरूर इसकी शिकायत कीजियेगा। सुपरिण्टेण्डेण्ट को यह बतलाना चाहिए।" इतने में इस्लाम आजाद वहाँ आया और कहने लगा--"कातर कान में घुसकर कान को खा जाय तो सर- कार के बाबा का क्या जाता? हमारा नुकसान हो जाय तो उसका जिम्मेदार कौन है?" देखते ही देखते ही एक कमेटी एक त्रित हुई, कि कातर के आने का क्या कारण है? और कौनसा प्रकरण उपस्थित किया जाय इस पर चर्चा आरम्भ हुई। परन्तु मेरी इच्छा कुछ भी करने की नही थी। 'महात्मा जी का शिष्य ऐसा ही भोला होता है' कहते हुए सब कमेटी के सदस्य नाराज

रोते हुए चले गये। कातर वहीं पड़ी थी, सुपरिण्टेण्डेण्ट आया और उसने उसे देखा और यह सोचकर कि मैं कुछ फरियाद करूँगा मेरी तरफ देखा किन्तु मैं कुछ भी नहीं बोला इतने ही में एक कौआ आया और उसे उठाकर लेगया और कातर पुराण यहीं समाप्त होगया।

जेल में आंगन साफ रक्खा जाता था, दीवालें प्रति वर्ष साफ होती थी, जमीन (फर्श) पन्द्रह दिन बाद ही लीपी जाती थी किन्तु ऊपर के खपरैल में [illegible] का कूड़ा तथा कैदियों की छिपाई वस्तुएं से भरी पड़ी थी इसी कारण वहाँ से ऐसी कातर इत्यादि कीड़े गिरते थे। मैंने ऐसा सुना था कि भाई रोज कुरैशी की रोटी में एक बार कातर निकली थी, मैंने सहज स्वभाव से यह सुपरिण्टेण्डेण्ट से कह दिया इसे सुनकर वह बोला यह असम्भव है किसी जलने वाले कैदी ने रोटी में डाल दी होगी। यह सुनकर मैंने कहा ठीक है, जेल की व्यवस्था का भी ऐसी होना असम्भव है और जेल की व्यवस्था तथा ईश्वर के नियम दोनों ही निर्दोष हैं।

बीसवीं शताब्दी का मयदानव

[illegible] १५ [illegible]

तब उसने उस तार को दोबजे से चार बजे तक पानी में भिगोया किन्तु दो घण्टे के महान् परिश्रम के उपरान्त कौए को यह पदार्थ ज्ञान हो गया कि लकड़ी के गुण और लोह के गुणों में अन्तर है। लेकिन अन्त में उसने अपने घोंसले में इसका उपयोग किया ही।

दूसरे दिन एक कौआ छाते के तार को ले आया वह अधिक सीधा था, इसलिए घोंसले में इसे रखने का स्थान नहीं था। एक कैदी ने इसे लेकर उसके दो टुकड़े कर एक स्थान पर छिपा दिये। मैंने पूछा इसका क्या करोगे भाई? उसने कहा— 'मुझे मौजे बनाना है।' मैंने कहा—'जेलमें मौजे पहनोगे।' 'नहींजी उस पठान पुलिस वाले को दूंगा जिससे मुझे बीड़ीकी सहुलियत मिल जावेगी।' मैंने कहा—'सूत कहां सेआयगा।' बोला—'स्टोर से।' 'वहाँ क्या तेरा हिसाब है?' यह पूछा तो उसने कहा—'अंग्रेजी राज्य में ऊपर ढोंग चाहिए, अन्दर का खुदा जाने।' एक दिन अल्लादाद दौड़ता दौड़ता आया और कहने लगा—'काकाजी काकाजी जरा इधर आइये तो सही हमने एक कौआ पकड़ा है। वहाँ जाकर देखा तो सत्य ही चतुर किन्तु ठगा हुआ कौआ था। इसके पांव में एक लम्बी रस्सी बंधी थी। कौए ने दुनिया के समस्त कौओं को पुकारा किन्तु उस समय वहाँ मैं अकेला ही उपस्थित था। मैंने अल्लादाद से प्रार्थना की और उसे मुक्त करवाया, मेरा ख्याल है इसके उपरान्त कौए ने जेल की ओर निगाह नही, की होगी। उसका पॉंव बंधा इसका कुछ नहीं, मर जाता इसका कुछ नही परन्तु कौआ ठगा गया यह बात उसकी पूरी जाति को असह्य होगी?

कौओं की तरह गिलहरियों का भी यहाँ साम्राज्य था, दिन भर ये आँगन में और पेड़ पर दौड़ा करती। शाम को छप्पर पर घूमती, दोपहर को जब भोजन का समय होता तब टीले पर आ बैठ जातीं और कहती—'हमें नहीं' हमारे फेंके हुए रोटी के टुकड़े

को हाथ में पकड़ नोकदार दाँतों से नोच कर खातीं और कुए का पानी पीतीं। शाम के समय बहुत सी गिलहरियाँ छप्पर के किनारे एकत्रित हो, खूब क्रन्दन करतीं। यह उनका आनन्दोद्गार था हम क्या जाने? परन्तु मुझे तो यह करुण क्रन्दन दमयन्ती विलाप सा ही लगता था। रोज सायंकाल ५ बजे यह क्रम नियमित चलता, एक दिन खूब बरसात हुई एक दिन तो यह क्रन्दन हुआ पर दूसरे दिन से बंद हो गया।

हम अपने सोने के कम्बलों को प्रतिदिन धूप में डालते थे वहां गिलहरियां आतीं और अपने दाँत तथा आगे के पैरों की सहायता से ऊन निकाल उसके गोले बना अपना घोंसला बनाने को ले जातीं। बहुत से कम्बलों में इस प्रकार इन्होंने छेद कर दिये थे। ठीक समय पर उनके घोंसले तैयार हुए, इस प्रकार का एक घोंसला मेरी कोठरी के ऊपर भी इन्होंने बनाया और कुछ दिन बाद उसमें बच्चे दिखने लगे। गिलहरियां हमारे भोजन की रोटी के टुकड़ों को बच्चों के पास लेजाकर खिलातीं। बच्चे दूध पीने के उपरान्त अनाज खाने लगे। एक दिन ऊपर से एक बच्चा गिर गया, नीम पर बैठे एक कौए के मुँह में पानी भर आया, किन्तु बच्चा मेरे कमरे में ही बैठ गया। मैंने अन्दर जाकर साधारण स्वभाव के अनुसार बच्चे को पकड़ लिया, पर वहाँ रखता कैसे?

दूसरा ही असर हुआ 'वे नियमित रूप से दो चार वार गिरे और हमेशा शामलभाई ने और मैंने सरकस की कसरत की। बच्चे माँ के पास गये और कहा 'शायद ये वाल्मीकि के शाप के योग्य नहीं है', वरन् हिरण शावक का पालन करने वाले जड भरत के समान कोई हैं।

इसी बीच मे कौए के बच्चे अपने अण्डों से बाहर निकले, पशु पक्षियों मे स्वय की रक्षा करने की बुद्धि तेज होती है। कैदी प्रतिदिन शाम का या सुबह दातुन तोड़ने के हेतु उस पर चढते बहुत से तो वहाँ से बाहर की दुनियाँ को देखने के लिए ही चढ़ते थे।" ये आपका आश्रम दिखता है, तीन मंजिल का एक दूसरा मकान दिखता है। 'ऐसा मुझसे कहते और ऊपर आने को कहते। पेड़ पर चढना जेल के नियमों मे अपराध था, मैं एक वर्ष के लिए जेल मे आया था। इसलिए मेरी इच्छा यह नहीं थी कि मैं अपराध करके बाहर की दुनियाँ को देखू। जब नीमके ऊपर कौओं के बच्चों का वास हुआ उस समय कैदियों की क्या मजाल थी कि पेड पर चढ़ जाये, कौए कष्ट देते, चोंच मारते या सिर की टोपी निकाल देते और अगर कैदी टोपी खो बैठे तो नौ दिन की माफी को खो बैठे। एक कौए की स्त्री को नीम पर चढने वाले शामलभाई तथा दूसरे दो कैदियों से अधिक जलन थी। इनको देखा कि बिना चोंच मारे नहीं रहते। हमारा वृद्ध झाड़ू वाला पीली टोपी पहनता था। उससे कौए की स्त्री अधिक नाराज थी, इस कारण अगर कोई पीली टोपी पहन कर पेड के नीचे से निकलता तो बिना उसके चोंच के प्रसाद के नहीं बच पाता। धीरे २ यह कार्य अधिक बढ़ गया अन्त में नूर मुहम्मद सिर पर चद्दर लपेट कर पेड पर से कौए के घोंसले को उतार लाया। उसमें ऊट के समान दिखने वाले तीन बच्चे थे, मुंह खोलकर पड़े हुए थे। मुंह के अन्दर रूपवान लाल चोंच दिखती।

नूर मुहम्मद की यह कठोरता अब्दुल्ला से नहीं देखी गई, इनसे चिढ़कर नूर मुहम्मद से कहा—'खिलाफतका अर्थ फाँसी परन्तु आप लड़ने के लिए बहादुर हुए और अपने बच्चों की रक्षा के हेतु चोंच मारने वाले कौए के प्रहारों से आप कायर बने और बच्चों का घोंसला तोड़ा खुदा तुमसे कितने नाराज हुए होंगे। बिचारा नूर मुहम्मद नरम पड़ा। शामल भाई को आश्चर्य हुआ कि एक माँसाहारी मुसलमान और इतनी दया? आखिर नूर-मुहम्मद ने पठान की सलाह से आँगन के बाहर वाले दूसरे पेड़ पर उस उस घोंसले को रख दिया। किन्तु वे वहाँ नहीं टिक सकते इसलिए फिर उसी पेड़ पर रखना पड़ा।

कौए की स्त्री को अपने बच्चों के खाने का सवाल हल करना था। इस लिए उसने अपनी काग दृष्टि फैला कर आहार ढूँढने का कार्य प्रारम्भ किया। इतने में गिलहरी के बच्चे बड़े हो कर इधर उधर घूमने लगे थे। कौओं ने उन बच्चों में से एक बच्चा मार कर अपने बच्चों को पाले के मांस का स्वाद चखाया। उस दिन से गिलहरी और कौओं से वैर पैदा हो गया। जब कौए ऊपर पर, पेड़ पर था और वहाँ बैठे होते तो एकाध मोटी गिलहरी उस पर पूछ फिरती हुई निकल जाती और कुछ अपने नाखूनों का प्रसाद दे देती। कौए और गिलहरी की लड़ाई तो मुझे स्पष्ट पता लगी थी। किन्तु कौए ज्यादा [illegible] करते थे। अगर कौओं के समान गिलहरी के भी पंख होते तो वह कुछ दूसरी ही प्रकार की होती। एक दिन एक कौआ कहीं से गिलहरी का बच्चा मार कर ले आया, और मेरी [illegible] से निगलने लगा। मैंने [illegible] पानी [illegible] दिया और [illegible] को [illegible] दिया, फिर [illegible] [illegible] नहीं [illegible] है। [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] मैं [illegible] पर [illegible] है

क्यों सजा दू ? मेरे देखते हुए अगर वह गिलहरी को मारता है तो उसे बचाना मेरा कार्य है और अगर मैं ऐसा नहीं करू तो मेरी दया वृत्ति मे दुर्भाव हो। किन्तु मेरी नाराजगी कौए पर से कम नहीं हुई। जब भी वह गिलहरी के बच्चों को मारता है तो क्या उसे यह ध्यान नहीं आता है कि वह अपने बच्चों को कितना प्रेम करती होगी ? मेरी माँ मुझे पेड़ पर से आम तोड कर खाने को देती, क्या इस कौयी के विचार करने का अधिकार केवल मनुष्य को है ? पशु पक्षियों को नीति शास्त्र से क्या सम्बन्ध किन्तु अब भी मनुष्य तो पशु के समान ही है, उसका हृदय दूसरे के दुखो से पिघलता ही नही। स्त्रियाँ अपने बच्चो से असाधारण प्यार करती हैं ? स्त्री एक दूसरी स्त्री के दुख को देख प्रसन्न होती है, इसमें कितना सत्य है, इसे तो वेही बता सकती हैं। लेकिन सृष्टिमे स्त्रियों का गुस्सा मनुष्य से अधिक होता है, यह सच है।

अजायबघर का मनुष्य

रविवार का दिन था, पुलिस वालों को जल्दी घर जाना था इसलिए हम लोगों की खुशामद कर उन्होंने जल्दी ही हम लोगो को कोठरियों मे बन्द कर दिया। मैं 'नाथ भागवत' का एक अध्याय समाप्त कर निश्चिन्त कोठरी मे बैठा था। रातपाली के पुलिस वाले आये और तालों को देखकर बीड़ी पीने किसी कौनेमे चले गये थे, इतने में एक मोटा तथा भारी बिलाव (बिलाड़ा) तृप्त हुआ सा अपनी मूँछों को चाटता हुआ तथा हाथी की तरह मस्त चाल से चलता हुआ आकर मेरी कोठरी के सामने खड़ा हो गया। वह मुझे ही ध्यान पूर्वक देख रहा था। उसने सिर ऊँचा-नीचा किया, दरवाजे की छडों में से देखा और गुर्राकर म्याऊँ शब्द के साथ सन्तोष प्रकट किया। मैने कितने ही अजायबघर के

पशु पक्षियों को देखा. लेखकों के वर्णनों को पढ़कर सन्तोष किया किन्तु यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मैं बन्द कमरे में बन्द होऊँगा और एक धूर्त बिलाव बाहर से मुझे देखकर सन्तोष करेगा। अगर बिल्ली तथा बिलावों का कोई समाचारपत्र निकलता होता तो वे अवश्य इस का सुन्दर वर्णन करते हुए लेख निकालते।

भोलुमियाँ—मैंने पहिले कहा है कि जेल में बन्दर बहुत थे, वे नीचे उतर कर हौज़ में से पानी पीते। हमारे साथ के प्रोफेसर झम्मटमल इन बन्दरों पर बहुत ही प्रेम रखते थे, सिन्धी भाषा में बन्दरों को 'भोलु' कहते हैं। बन्दरों को देखतेही झम्मटमल प्रसन्न हो जाते। कई बार मैं और हम शाम को चार बजे साथ साथ टहलते, उस समय बन्दर पास की दीवार से गुज़रते। मेरी छाप बन्दरों पर एक अतिथि की सी थी। जब मैं नहाता तो वे बिना डरे दीवाल पर होते हुए चले जाते। गर्मी के दिनों में झम्मटमल ने सोचा कि गर्मी से सिके हुए इन भोलुओं को नहलाया जाय तो कैसा? वे अपने ऊपर के बर्तन को लेकर चुपचाप रहते और जैसे ही बन्दर दीवाल पर से निकलते वे 'हाऊ' करते हुए उन पर डाल देते। बन्दर इससे प्रसन्न नहीं होते वे थोड़ी दूर भागते हट जाते और फिर घूमकर दाँत निकालते हुए देखते और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

खाते। यहाँ तक ये बन्दर बढ़ गये थे कि हमारे हाथ में से रोटी ले जाते, इनमें एक वृद्ध बन्दर था जिसके दाँत टूट गये थे उसे हम शुक्रवार तथा रविवार को गेहूँ की रोटी दिया करते थे।

किन्तु थोड़े ही दिनों में इन भाई-बन्दों ने बहुत ही ऊधम करना शुरू कर दिया था, एक दिन छै साढ़े छै बजे के करीब आये और हौज के पास वाले पीपल के पेड पर चढकर उसके उन पत्तों को जो धूप में चिकने २ खूब चमकते थे तथा कितनी ही डालियों को तोड़ डाला। फिर नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे कूदते हुए तथा अपनी भीड़ के साथ अंधेरे होने पर घर गये। पर उनका घर कहाँ?

तर्कशास्त्र

दूसरे दिन मैंने अपने साथियों से कहा कि हमें बन्दरों को अधिक ललचाना नहीं चाहिए। नहीं तो किसी दिन इनकी भी उसकी प्रकार हत्या होगी जिस तरह कबूतरों की हुई थी और इनकी हत्या का पाप हम लोगों को लगेगा। मैंने उनसे प्रार्थना की किन्तु फिर भी किसी के आचरण में कोई अन्तर नहीं आया। एक दिन एक खेरल नामक सिंधी भाई ने एक बन्दर को ललचा कर एक खाली बेरक में बन्द कर दिया और फिर बाहर से अंदर पत्थर फेंकने लगे। बन्दर खूब चिल्लाकर चीखने लगा और कूद फांद करने के बाद ऊपर छप्पर पर चढ़कर बैठ गया। मैंने खेरल से कहा—"छोड़ दो बिचारे को, गरीब को क्यों सताते हो?"

उसने कहा—"ये तो हमारे दुश्मन हैं, इनको तो मारना चाहिए।"

"ये तुम्हारे दुश्मन कहाँ से बन गये?"

"अंग्रेज हमारे दुश्मन हैं, हम अंग्रेजों को बन्दर कहते हैं, इसलिये ये हमारे दुश्मन हैं। इनको जरूर मारना चाहिये।"

वहाँ पर इकट्ठे हुए पाँच-पचीस बन्दर जोर जोर से चिल्ला रहे थे।

और इधर मैं नेहरू के तर्कशास्त्र में उलझा था, फर्ग्युसन कॉलेज में मैंने देखा विद्यार्थी दोनों ही प्रकार के तर्कशास्त्र पढ़े थे। मैंने अपने महाविद्यालय में कई बार तर्कशास्त्र पढ़ाया था, परन्तु इस तर्क के सामने भौंचका रह गया। मैंने उससे कहा— "तुम अंग्रेजों को बन्दर कहते हो, इसमें बन्दरों का क्या गुनाह है? क्या ये तुम पर राज्य करते हैं? क्या तुम्हारे देश में दुश्मनी करते हैं? क्या बन्दर तुम्हारे देश को लूट रहे हैं?"

नेहरू ने कहा—लेकिन हैं तो ये बन्दर ही न? इसलिए ये हमारे दुश्मन हैं, जैसे अंग्रेज वैसे ये।

अन्त में सब लोगों के दबाव से बन्दर को छुड़वाया गया और फिर सब रात को सोने के लिए चले गए।



एक अनुभव

पतंगों के साथ में चींटे भी मृत्यु के लिए उपमा के योग्य होते हैं। मैंने बरसात में देखा है कि रात को दिया जलाने के बाद पतंगे चींटे आकर उसके आस पास गोल आकार में परिक्रमा करने लगते और उसकी परिक्रमा करते और अन्त में मर जाते हैं। [illegible] पानी पीने या नहाने [illegible] जाते। [illegible] के किनारे पर पहुंचते और [illegible] फिसलने पर [illegible] [illegible] मैं [illegible] इस समय [illegible] पर ध्यान [illegible] [illegible] किन्तु [illegible]

हौज की ओर चल देते और पानी में गिर जाते। मुझे उनकी इस बेवकूफी से बडी चिढ आती। क्यों कि पहली बार तो अन जाने से गिर गये और पडने के बाद मे उसमें तडपने लगे तथा अधमरे हो गये, इनको बाहर निकाला और फिर उधर ही चले इनका अनुभव कहाँ गया ? उन्होने हौज में कितने ही मरे चींटे देखे किन्तु अक्ल नहीं आई। मैंने कितने ही को तीन २ चार २ वार निकाला किन्तु अनुभव से कुछ समझे ऐसी यह जाति नहीं है। मैने सोचा कबूतरों से अधिक बेवकूफ ये प्राणी हैं। मनुष्य जाति विषय में पडकर क्षीण काय होती है' मर जाती है किन्तु फिर भी विषय को नहीं छोडती। मनुष्य की शादी होती है। पश्चाताप करता है किन्तु फिर भी विवाह करना छोड़ता नहीं। हम हिन्दुस्तानी लोग दूसरों की मदद पर आधार रखते हैं और उनके जुल्मों के के वश में हो जाते हैं। इतिहास मे ये अनुभव कितनी ही बार हुए हैं लेकिन हमे व ही बातें फिर करते आये हैं। तो फिर आत्म हत्या करने वाले चींटों की ही जाति बेवकूफ है ऐसा मैं क्यों मानूँ ?

इन्द्रगोप (वीर बहूटी)

इन्द्रगोप का नाम बहुत कम लोगों ने सुना होगा किन्तु इन्द्र-गोप को देखा नहीं हो, ऐसा मनुष्य शायद ही कोई मिले। बर-सात के आरम्भ होते ही अनार के दाने के समान लाल, मख-मली कितने ही कीड़े जमीन के बाहर आते हैं और घूमा करते है। ये आठ दस दिन तक ही दिखाई देते हैं और फिर आठ दिन का जीवन भोग कर अलोप हो जाते हैं। इन आठ दिनों में ये प्राणी अपना बचपन, यौवन और बुढ़ापा भोग लेते हैं और अपने अण्डे धरती माता को सौंप कर दुनिया से विदा हो जाते हैं। इनके मन में यह शका नहीं होती कि परम्परा कैसे चलेगी

न इनके मन में यही डर रहता है कि इनकी जाति के नाश होने से दुनिया को कितना नुकसान होगा। इस वर्षा काल में बच्चों की सम्भाल कौन करेगा ऐसी मनोव्यथा उनको दुखित नहीं करती प्रकृति माता पर विश्वासकर अपना जीवन पूर्ण करते हैं। मनुष्य को ही अपने वंश की चिन्ता रहती है। वंश परम्परा निरन्तर रहे इतनी ही प्रतीक्षा करने पर, बच्चों के बच्चे हो जाने पर और इस प्रकार अपने बाद छोड़ने पर भी आदमी का मरण सुख से नहीं होता। इन्द्रगोप की रक्षा इन्द्र करता है, किन्तु क्या मनुष्य की रक्षा करने वाला कोई नहीं है, अथवा हम यह मानले कि मनुष्य ने देखा होगा कि ईश्वर के सिर खूब चिन्ता है चलो और कुछ नहीं तो अपना भार तो स्वयं उठालें और उसका इतना भार हलका करदें।

सात कोठरी

युरोपियन वार्ड के अनेक नाम हैं। इस जेल में भारत में ही कभी कोई युरोपियन आता है। इसका सरकारी नाम केवल नाम मात्र को ही है, नये आये हुए कैदी सब इसी में रखे जाते हैं। इसलिए इसको 'क्वारन्टीन' कहते हैं। इसके बरामदे के पंक्ति में सात कोठरियाँ हैं, इसीसे 'सात कोठरी' कहते हैं। जेल की हमारी

बड़ी सुविधाएँ

अब मुझे खुली हवा मे सोने की आज्ञा मिली, मेरे साथ शामलभाई आये उन्हें भी मेरे ही साथ खुले में रखा क्योंकि बिना उनकी मदद के मेरा चले ऐसा नहीं था। सात कोठरी में पहली परेशानी यह हुई कि दिन-रात जेल का घण्टा सुनाई देना जिससे समय का ख्याल रहता दूसरे रेलवे ट्रैन की आवाज। पहले मैं सात कोठरी में रहा था तब रेल की सीटी तरफ ध्यान नहीं गया था किन्तु छै माह के निवास से रेलवे की सीटी आकर्षक होगई।

हिमालय की २३०० मील पैदल यात्रा के उपरान्त पहले पहल जब यह सीटी सुनी तो नीरस लगी किन्तु आज रेल की आवाज में अपूर्व काव्य भर गया। ऐसा मालुम होता मानों ट्रेन जीवित है और दूर २ की मुसाफिरी के लिए न्योता दे रही है। साँवरमती स्टेशन के इंजिन वाल, रसिक होना चाहिए तभी तो इंजिन में से ऐसे लम्बे २ विषाद पूर्ण स्वर निकालते; जिससे बैठे हुए स्थानों पर मन अस्वस्थ हो जाना। आज के कवि बैल गाडी अथवा ऊंट की मुसाफिरी को 'रोमान्टिक' कहते हैं और रेलवे की मुसाफिरी को शुष्क गद्य जैसा कहते हैं। रेल की सवारी जब नई थी तब इसमें कौतूहलपूर्ण काव्य था और अब जब सुधार के युग में वह पुरानी हो जावेगी तो उसमें पुरातन का काव्य मिलेगा।

गिलहरियों की मित्रता

गिलहरियों का करुण क्रन्दन अब बन्द हो गया और अब वे आँगन में होड़ लगाने लगीं। अब तक बहुत सी गिलहरियों ने हमारे साथ मित्रता करली। हमारे पास आती और मुँह हिला हिला कर रोटी के टुकड़े माँगती। हमको मिलने

वाली जुआर की रोटी के लिए कैदियों की शिकायत तो रहती ही थी किन्तु कौए, चील, गिलहरी और तोते भी जुआर की रोटी वाले दिन अधिक प्रतीक्षा नहीं करते। बहुत से कैदी यह कहते "यह वह जुआर है ? पेट में डालने योग्य मिट्टी।" मैंने देखा कि कैदी जुआर की अपेक्षा खुश्क बाजरी को पसन्द करते। गेहूं की रोटी होती, उस दिन गिलहरी हमारे सामने बैठ कर हाथ में से रोटी का टुकड़ा ले कमरे के भीतर जाकर खाती। एक दिन तो दो गिलहरियों की होड़ चली, उनमें से एक पीछे से दौड़ती आकर मेरे कंधे पर चढ़ बैठी। हम गिलहरियों को सुबह गरम गरम कांजी देते। जिस दिन सुबह कांजी देर से आती हो उस दिन ये गिलहरियां अधीर बालक की तरह हमें परेशान करतीं।

प्रभु तू

पिछले आंगन की दीवाल पर दयापात्र फाख्ताओं का जोड़ा कई बार आकर बैठता। कहा जाता है कि समस्त प्राणियों में फाख्ता निष्पाप तथा भोला जानवर है। सारा दिन 'प्रभु तू, प्रभु तू' रटा करता है। महाराष्ट्र में इसे 'कवडा' कहते हैं। यहां के और वहां के फाख्ता में रूप भेद तो इतना ही नहीं किन्तु शब्द भेद भी है। महाराष्ट्र के फाख्ता प्रभु तू नहीं कहते, उनकी आवाज 'कुटुर', 'कुटुर' सी होती है। इनके ऊपर बड़ा गांवों में एक कथा कही जाती है कि फाख्ता पहले मनुष्य था, [illegible]

[illegible]

किया। भाई ने देख लिया कि स्त्री के पौआ सेर भर हैं और बहन के तो बहुत ही कम हैं। उसने मन में निर्णय किया कि बहन पक्की स्वार्थी और पेटू है। स्त्री तो स्त्री है, उसे जितनी पति की चिंता होगी इतनी दूसरे को कहाँ से लगेगी ? भाई ने क्रोधित होकर सेर उठाकर बहन के कपाल पर मारा। बिचारी बहन वहीं तड़प कर मर गई। थोड़ी देर बाद भाई के तैयार किए पौआ खाने बैठा। स्त्री के तैयार किए पौआ उसने मुंह में तो डाल लिए किंतु भूसी मिली होने से खाये कैसे जांय ? थू थू करके सब निकाल दिये, फिर बहन के पौआ खाने लगा। क्या इनकी मिठास ! दुनियाँ में बहन के स्नेह के बराबर होवे ऐसी कोई वस्तु है ? भाई ने एक ही कौर खाया और पश्चाताप से बहन के शव के पास बैठ प्राण छोड़े। तब से इसे फाख्ता का जन्म मिला है और इसकी पश्चाताप की योनि चल रही है। वह बोला-मीते, (क्षमाकर) उठ, मैंने तो बचपना किया, तेरे ही पौआ मीठे थे।

संस्कृति का अभिमान

मै मानता था कि कोयल अपने अडों को कौए के द्वारा सेवाती है, यह केवल कवि कल्पना होगी। 'शकुन्तला' मे जब पढा— 'अन्यैर्द्विजै: परभृत: खलु पोषयन्ति' तब कालिदास ने लोकमत का उपयोग किया, यही माना था। किन्तु जेल में देखा कि सत्य ही कौए कोयल के बच्चों को पालते हैं। इधर-उधर से खाने का ला खिलाते और लाड़ लडाते फिर थोडे ही दिनों में संस्कृति का झगडा आरम्भ हुआ।

कौए को लगा कि केवल बच्चों को खिलाना इतना ही ठीक नहीं वरन् अपनी ऊंची शिक्षा भी उन्हें देना चाहिए इसलिए समय निकाल कर कौआ घोंसले पर बैठ सिखाता बोल का-का-का किन्तु पहले कोयल का कुलज्ञ होने से उत्तर देता 'कुऊ-कुऊ-

कुऊ। कौआ चिढ़कर चोंच मारता और फिर शिक्षा प्रारम्भ करता। परन्तु इस तरह कोयल अपनी संस्कृति का अभिमान कैसे छोड़े। उसने तो अपनी 'कुऊ-कुऊ' रटना ही आरम्भ किया। कौए का धैर्य चुका तब तक कोयल का बच्चा पैरों से चलने लायक अथवा सच कहें तो पाँख भर हुआ था। कौए की सब मेहनत व्यर्थ गई। मुझे लगता है कि कौए को हिन्दुस्तानी होने से अपने निष्काम कर्म करने का समाधान तो अवश्य मिला होगा—
"यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यन्ति कोऽत्र दोष।"

ऐसा नहीं होता तो प्रतिबद्ध ऐसों की ऐसी खुराफात बार बार किस लिये करता? शामल भाई ने कहा-'इन कोयल के बच्चों जैसी अक्ल हमारे अंग्रेजी पढ़े भाइयों में होती तो वे घर में अंग्रेजी नहीं बोलते।'

शकुन हुआ

दशहरे के दिन एक पंछी उड़ता-उड़ता हमारे यहाँ आया। बचपन में नीलकंठ विषयक कविता खूब सुनी थी। नीलकंठ अर्थात् आनन्द कल्याणकारी पक्षी। जहाँ वह जावे वहीं शुभ हो, नीलकंठ के दर्शन हों उस दिन अच्छा अच्छा खाने को मिलता है, ये सब भावनाएँ उसके दर्शन के साथ ही मन में ताजी होती हैं। मुझे अच्छा खाने की इच्छा नहीं थी न खाना ही था, मैंने

कुछ देर इधर उधर उड़कर मानों फिर किसी भारी भूले काम की स्मृति आई हो ऐसे एकाएक जल्दी-जल्दी उड़ गया। समाप्त होने वाले वर्ष सुपरिन्टेण्डेन्ट ने यही नीलकंठ देखा। उसने मुझसे आकर कहा—'मि० कालेलकर! आज मैंने नीलकंठ देखा इसका महात्व क्या है? मैंने कहा—'आपका सारा वर्ष आनन्द में व्यतीत होगा, इसलिए नीलकंठ का शिकार नहीं करना चाहिए।' सुपरिन्टेण्डेन्ट ने कहा—'पूरा वर्ष कैसा जावेगा कौन जाने, पर आज तो सुबह उठकर नये कारखाने में कैदी और मुकद्दम लड़ पड़े, यह मुझे अपशकुन हुआ।'

पढ़त मूर्ख नो पुरुषार्थ

सत्य ही कबूतर बेवकूफ प्राणी है, हमारे आंगन के छप्पर में बल्ली और टपरी के बीच घोंसला बनाने का एक कबूतर के जोड़े ने विचार किया। वहाँ घोंसला टिके ऐसा नहीं था और फिर रोज सुपरिन्टेण्डेन्ट आकर भीतर से देखता कि छप्पर ठीक है या नहीं। कबूतर सुबह से शाम तक नीम की कितनी ही सीकों को इकट्ठी कर जमा करते, लेकिन जितनी जमाने का प्रयत्न करते उतनी ही नीचे गिर जाती और नीचे कूड़ा गिरता। मुझे हुआ कि इस पति-पत्नी को व्यर्थ के प्रयत्न से बचाऊं। मैंने दो-तीन दिन सारे दिन इन्हें उठाने का कार्य किया, इनको मैं वहाँ आने ही नहीं देता परन्तु ये पढ़े हुए मूर्ख कबूतरों ने उत्तम मनुष्यों का लक्षण याद कर लिया था।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्ध उत्तमजना न परित्यजन्ति।

इन्होंने अपना पुरुषार्थ जारी ही रखा। मैंने हार मानी और इनकी दृष्टि का इनका काम निर्विघ्न समाप्त हुआ। बाद में जब २ मैं सुबह इनके घोंसले के नीचे से चक्कर लगाता तब

अपनी प्राकृतिक लाल आँखों से मेरी तरफ देखते और मैं सोचता हूँ कितने ही शाप देते होंगे। परन्तु इनकी आँख की ललाई में कोई तपस्या की अग्नि नहीं थी जो मैं जल जाता। इनके ही बोझ से इनका घोंसला कितनी ही बार गिर पड़ता, आखिर घोंसला आधा तैयार हो उसके पहले ही मादा ने इस घोंसले में अंडा रखा और नम्बर से उसकी देख भाल करने लगे। एक दिन नर उड़ा और उसके भार से घोंसला गिर गया और अण्डा फूट गया फिर भी उन सेठ सेठानी को अक्ल नहीं आई और फिर वहीं दूसरा घोंसला बनाना आरम्भ किया। इस बार कुछ ठीक बना था। पर वह पूरा हो उसके पहले ही मादा ने दूसरा अण्डा रख दिया। वह भी लुढ़क गया किन्तु इस समय सीधा फर्श पर न गिरता इस कारण टूटा नहीं किन्तु कुचल गया। मैंने घोंसला ठीक किया और अण्डे को उठा कर वहां रख दिया। इस अण्डे में से बच्चा निकले यह तो नहीं था किन्तु मैंने सोचा इससे इस जोड़े को आशा तो मिलेगी। एक दिन इन्होंने अण्डे को सेया किन्तु इनके भाग्य में तो दुख ही था वह कैसे टलता? एक गिलहरी को फूटे अण्डे का पता चल गया और कबूतर नहीं है ऐसा समय देख कर अंडा फोड़ खाया। उसकी दाँत की आवाज सुन मैं पास गया। बचपन से मैं यही मानता था कि गिलहरी फलाहारी प्राणी है। इस प्रकार अण्डे को खाते देखकर मेरे हृदय में बचपन से जो गिलहरी के लिए काव्य-प्रेम था वह कम हो गया। कबूतर और गिलहरी दोनों निष्पाप प्राणी हैं, मैं यह मानता था। गिलहरी अपने बच्चों की रक्षा के लिए कौए से [illegible] इसे मैंने कबूतर से ऊँचा स्थान दिया था। कबूतर दूसरे को दंडा नहीं देते परन्तु साथ में अपनी रक्षा करने की ताकत व हिम्मत नहीं थी। गिलहरी हिंसा में [illegible] किन्तु [illegible] में [illegible] ज्यादा प्राणी है ऐसा मैंने मान लिया किन्तु [illegible] गिलहरी के [illegible] मेरा काव्य-प्रेम नष्ट हो [illegible]

अनाथ शिशु

सत्य संकल्प का फल देने वाला ईश्वर बैठा है। एक दिन शामलभाई गिलहरी का एक बच्चा कैदी की टोपी में मेरे पास ले आये और कहने लगे एक कौआ इसे ले जा रहा था, हम दो जनों ने चालाकी से इसे बचाया है, अब इसका क्या करें? मुझे कालेज के दिन याद आये एक कपड़े के टुकड़े की बत्ती बना दूध में डुबो बच्चे को चूसने के लिए दी परन्तु यह घबराया बच्चा किसी भी प्रकार दूध नहीं चूसता। रोटी दी, खीचड़ी दी, चावल दिये परन्तु वह इनमें से किसी को छूता तक नहीं। आखिर मेरे नहाने के डिब्बे में एक कपड़ा बिछा, उसमें इसे बिठा दिया और हम सो गये। दूसरे दिन तो उसने चीख २ कर सारा वातावरण अशान्त कर दिया। शामल भाई बिचारे व्याकुल हो गये। बच्चे का क्या करना, यह किसी को नहीं सूझता था। हर कोई आकर बच्चे को हाथ में लेता, बिचारा बच्चा जान बचाने को हाथ में से कूद पड़ता। थक जाता, पेशाब करता और दौड़ता। एक बार तो ठाकुर साहब की कोठरी में लकड़ी पड़ी हुई थी उसमें जाकर बैठ गया। मुश्किल से उसे बाहर निकाला। कौआ तथा बिल्ली दोनों के मुंह से रक्षा करना यह सरल बात नहीं थी। बिचारे को भूखे मरते दो दिन हो गये थे। भूखे मरते को कैसे बचाया जाय और फिर कौओं के व बिल्ली के मुंह से कैसे बचाया, यह चिन्ता हम लोगों को लग गई थी।

महीने गिनते दिन रहे

किसी लोक कवि ने मृत्यु के विषय में कहा—'दिन गणु तां मास थया वरसे आंतरियां' (दिन गिनते मास बीत गये बरस भी चले जांय) परन्तु जेल वास नो शायत

सामाजिक मृत्यु है इस लिए वहां का क्रम 'मान गए तो उन रह्या' जैसा उलटा होता है।

अब विदाई का दिन पास आने लगा सौ दिन के पचास रहे, पचास के पच्चीस रहे और पीछे तो आठ ही दिन रहे। शामल भाई का धीरज चुका। उन्होंने दिवस गिनना छोड़ दिया और घण्टे गिनने लगे। आँगन में लगे हुए आम के व जामुन के पेड़ों के विरह की कल्पना मन में आने लगी। जामुन में कीड़े लग गये थे। कीड़े पेड़ के पत्तों को खा खाकर उसके प्राण लेने की कोशिश में थे। खाये हुए पत्ते मैंने यत्नपूर्वक निकाल डाले थे, स्वभावतः बिगड़े हुए पत्ते तथा पेड़ के तने में रोज आयोडीन पानी से धोता, इस प्रकार कार्य करके मैंने उसे बचाया था फिर उसमें नये पत्ते आये थे और वह ऐसा प्रसन्न दिखता था मानों वसन्त की ऋतु सी। आम भी इसी प्रकार बचाया था। ठाकुर साहब के रसोइये ने आम को राख तथा कूड़ा करकट का इतना खाद दिया था कि बिचारा लगभग दब गया था उसे सुन्दर क्यारी से बना कर सुखी किया था। मेरे जाने के बाद इन दोनों का क्या होगा? यह विचार मन में आये बगैर कैसे न रहे? गेंदे का पेड़ तो कब का सूख गया था उसकी आशा छूटने के पीछे उसके फूल तोड़ तोड़ कर मैं मटिया बनाता। जेल के शुष्क खाना खराब में गेंदे की लड़ी मजेदार लगती!

विदा की वेला

आखिर फरवरी की पहली तारीख आई, प्रातः ४ बजे उठ कर नहा लिया, जेल के भ्रष्ट खुराक का प्रसाद धो डालने के लिए पहले दिन मैंने उपवास किया था। स्नान कर शरीर स्वच्छ हुआ, मेरा लगभग सब सामान पिछले दिन दे दिया था, इस लिए तैयार होने में कुछ था भी नहीं। आम और जामुन को

चलते हुए कुछ पानी दिया। हीरा से मिलने का मन था परन्तु इतनी जल्दी वह कहां से आई होगी? जेल की चारों दीवारों से घिरे आकाश में तारात्रों के अन्तिम दर्शन कर लिया। इतने मे ठाकुर साहब उठे, शामल भाई स्नान करके आये। हम तीनों ने जेल के नियम के विरुद्ध एकत्रित बैठ कर प्राथना की। शामल भाई ने प्रभाती गाई।

क्षीणे पुण्ये!

प्रभाती पूर्ण होते पौ फटी, परन्तु बाहर ले जाने को कोई नही आया। शामल भाई ने कहा—'हौज के आगे वाले तुलसी के पेड़ को तो तुम भूल ही गये। मुझे शर्म लगी, दौड़ता गया तुलसी को पूरा एक डिब्बा पानी पिलाया। इतने में एक वार्डर आया उसने मुझे द्वार पर चलने को कहा। सुपरिण्टेन्डेन्ट के साथ बिदा के दो शब्द बोल कर जेल के बाहर आया। निकलते समय मुंह से ये उद्गार निकल गये।

'क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति'

साहित्य-विचार

फार्बस गुजराती सभा

काशी नागरी प्रचारिणी की भाँति बम्बई की 'फार्बस गुजराती सभा' ने प्राचीन गुजराती साहित्य के उद्धार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। १६ जनवरी सन् १६८६ को बम्बई के टॉउन हाल की एक सभा में इस सभा का प्रथम उद्देश्य गुजराती के काव्य तथा अन्य विषयों के हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह करना रखा गया था तब से यह सभा निरन्तर कार्य करती चली आरही है। गुजराती भाषा की उन्नति के लिए इस सभा ने अपूर्व कार्य किया है।

इस सभा के स्थापन करने वालों में सर्व श्री नोनसुखराम, रेवरेन्ट मिस्टर धनजी भाई, डा० विलसन और फार्बस साहब के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस सभा ने तब से गुजराती साहित्य के विकास, प्रचार में अपना योग दिया है। अनेकों जिज्ञासु विद्यार्थियों ने इसके द्वारा ज्ञान लाभ किया है और महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य किया है।

राष्ट्रीय विद्यापीठ

गुजरात विद्यापीठ के विद्यार्थियों के समक्ष आचार्य ध्रुव ने एक व्याख्यान दिया था। इसमें इन्होंने राष्ट्रीय विद्यापीठ के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किए थे। इन्होंने इससे पहले [illegible] के सम्बन्ध में अपना यह विचार प्रगट किया था कि [illegible]

केवल ऊपर की वस्तु होकर न रह जाय, वरन् उसे अन्तर के गुणों को विकसित करना चाहिये। निर्मलता, शुभ्रता, सदाचार, सयम, सत्यनिष्ठा, अहिंसा आदि गुणों का जीवन में शाश्वत समावेश विद्यार्थियों के हृदय में हो, यह आवश्यक है।

(दूसरी विशेषता स्वतन्त्रता की है। स्वतंत्रता का अर्थ उच्छृंखलता नहीं है, इसका अर्थ यह है कि विद्यार्थियों को स्वावलम्बन तथा अनुशासन के भीतर रहकर अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करना चाहिये। स्वतत्रता का अर्थ यह है कि विद्यार्थियों में व्यक्तिगत विकास की ओर जागृति होनी चाहिये, साथ ही विद्या के वातावरण में उनके मानसिक स्तर को भी ऊँचा होना चाहिए।)

इस स्वतत्र और अनुशासित विकास के लिए यह आवश्यक है कि सस्कृत साहित्य और उससे उत्पन्न गुजराती, मराठी, बगला आदि भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करना चाहिये। यह ज्ञान केवल भाषा तक ही सीमित न हो वरन् गम्भीर और तुलनात्मक दृष्टि से होना चाहिये।

दूसरे इतिहास विषय की जानकारी होनी चाहिये। विशाल दृष्टिकोण से प्रत्येक जाति और देश का इतिहास पढा जाय। दूसरे शब्दों में साहित्यिक दृष्टि से इतिहास का अध्ययन होना चाहिए।

तीसरा विषय तत्वज्ञान है, जिसका अध्ययन आवश्यक है इसके लिए विद्यार्थियों को भारतीय दर्शन का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। अधिकाश दार्शनिक ज्ञान अग्रजी के माध्यम से करते हैं जो उचित नहीं है। उन्हें चाहिये वे सस्कृत, पालि, मागधी आदि भाषाओं का अध्ययन करके तब आगे बढ़ें।

अन्य विषयों मे अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान और समाजशास्त्र का अध्ययन अपने प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के आधार पर होना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि यूरोप के लेखकों के ग्रथों

पर विचार न किया जाय, कहने का अभिप्राय केवल यह है कि भारतीय दृष्टिकोण को प्रमुख होना चाहिए।

गुजरात विद्यापीठ की एक नई प्रवृत्ति

गुजराती विद्यापीठ के सच्चे मित्र तथा हृदय से इसके शुभ चाहने वालों की संख्या अधिक है। इस संस्था ने अपने साथ जुड़े हुए पुरातत्व मन्दिर द्वारा स्वतंत्र रूप से गुजरात की बहुत सेवा की है। इसने गुजरात के युवकों में, अंगभूत विद्यार्थियों में इसके बाहर भी अपूर्व अभय, सत्यनिष्ठा, दृढ़ता, सादगी, देशभक्ति तथा सेवा के भाव भरे हैं। एक नई शिक्षा की भावना इसने गुजरात के आगे उपस्थित की है इस कारण जितना इस संस्था के मित्रों को आनन्द होता है उतना ही इसकी क्षीणता पर दुःख होता है।

विद्यापीठ के अध्यापकों तथा पुस्तकशाला की वृद्धि देखते हुए इसके मूल उद्देश्य के साथ उच्च स्तर की शिक्षा का उद्देश्य था यह स्पष्ट है किन्तु यह उद्देश्य सदा के लिए स्थिर होता तो अच्छा होता। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का स्वधर्म होता है उसी प्रकार प्रत्येक संस्था का धर्म होता है। लेकिन दूसरे धर्म की सेवा करना नहीं यह अमिट सच्चा सिद्धान्त है। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को अपने आप अपने गौण भाव रखना चाहिये। ऐसा होने से अपने धर्म की रक्षा हो सकती है। यह बात भूलने की नहीं है कि विद्यापीठ का उद्देश्य देश सेवा और देशभक्ति के साथ उच्च प्रकार की शिक्षा देना भी था।

प्रारम्भ काल का यह ध्येय बाद में जो शिथिल पड़ गया, इसमें अध्यापक या कार्यकर्ताओं का दोष नहीं, यह इसके ध्येय की नई स्थापना हुई। जिसके कारण इस प्रकार की शिक्षा का

आरम्भ हुआ जिसमें आगे चलकर विद्यार्थियों को परिश्रम न करना पड़े और यही कारण है कि उच्च शिक्षा के स्थान पर ग्राम सेवा के अनुकूल शिक्षा का आरम्भ हुआ।

इस प्रकार की परिस्थिति हो जाने से उसी प्रकार ध्येय में भी फेर फार हुआ। इस फेर फार से आपने क्या खोया, इसका कारण हो ही आता है। अच्छा होता अगर नये विद्यार्थी नहीं आते तो पुराने ही विद्यार्थी और अध्यापक मिलकर उच्चशिक्षा के विकास का कार्य करते। हम नई प्रवृति को शिक्षण प्रवृति के स्थान पर समाज सेवा के उपक्रम रूप मानते हैं, हम इसका आदर करते हैं, अगर ग्राम सेवाकी ओर किसी का ध्यान प्रजाकी तरफ से गया तो केवल गांधी जी का और गाधी जी की प्रेरणा से ही श्री नगीनदास अमूलखराय जी की ओर से एक लाख रुपये का दान विद्यापीठ को ग्राम सेवा मन्दिर के लिए मिला।

इस मन्दिर के उद्देश्य—

(१) स्वराज्य की दृष्टि से ग्राम संगठन करना, शिक्षा वाले सेवक तैयार करना।

(२) जिसे विद्यापीठ के ध्येय मान्य हैं, उसे शिक्षा पाकर जहाँ विद्यापीठ भेजे वहाँ पाँच वर्ष ग्रामसेवा करना।

(३) प्रविष्ट होने वाले युवक का रहना साधारण तथा श्रम परिश्रमी होने की इच्छा होना चाहिए।

(४) जो उम्मेदवार विनीत होगा उसे दो वर्ष, जो स्नातक होगा उसे एक वर्ष शिक्षा दी जायगी और परिणीत उम्मेदवार के स्थान पर अपरिणीत अधिक पसन्द आवेंगे।

(५) मूल उद्देश्य को देखते हुए जो उम्मेदवार अधिक योग्य होंगे उन्हें भी प्रविष्ट करने में कोई बाधा नहीं होगी।

(६) इस मन्दिर के विद्यार्थी छात्रालय में रहेंगे तथा छात्र-वृति अधिक से अधिक २०) मिलेंगे।

(७) जो शिक्षा प्राप्त कर लेगा उसको प्रमाणपत्र दिया जायगा तथा अगर योग्य हुआ तो ३०) से ५०) रु० तक वेतन से रोक लिया जायगा।

(८) इस मन्दिर का अभ्यास क्रम नीचे लिखे अनुसार है।

(क) सामान्य शिक्षण में रही कमियों को दूर करने के लिए—

१--गुजराती-मफाईदार अक्षर तथा शुद्ध उच्चारण।

२--भूगोल-

३--ग्राम के मूलतत्व कातना।

४-- संगीत का सामान्य परिचय भजनों के द्वारा

(ख) ग्रामसेवा की योग्यता के लिए

१--सम्पत्ति शास्त्र

२--ग्रामों का आर्थिक सामाजिक अभ्यास।

३--कातना पीजना और उसके सुधारने के उपाय।

४--स्वच्छता तथा आरोग्य संरक्षण।

५--आहार शास्त्र, घर वैद्य।

६--शिक्षण शास्त्र के मूलतत्व तथा शाला की व्यवस्था।

७--व्यायाम।

८--सभाशासन।

९--दर्शन पानी।

इन ऊपर के अभ्यास क्रम के साथ ही जमीन का, गृह उद्योग सहकारी मण्डल, मजदूर संघ इत्यादि साम्यवाद के प्रकार विषयों का परिचय नियत भाषाओं द्वारा देने में आवेगा।

इस प्रकार की शिक्षा परिणीत जीवन की सुन्दर तथा भावुकता से भरी हुई ग्रामसेवा के लिए अत्यन्त उपकार की है और वे केवल गाँव के आदर्श रूप बन जाने पावेंगे

अर्वाचीन हिन्दुस्तान के इतिहास की परिषद

तारीख ७ जून १९२५ को पूना में अखिल भारत अर्वाचीन इतिहास की परिषद हुई। अर्वाचीन अर्थात् सन् १००० ई० से लेकर अब तक। इसके तीन भाग हुए (१) मुगलों से पहले (२) मुगल समय (३) ब्रिटिश समय।

'भारत इतिहास संशोधक मण्डल' के प्रयत्न से यह परिषद् हुई थी, इसके प्रमुख इलाहाबाद युनिवर्सिटी के इतिहास के प्रो० डा० सर शफात थे।

परिषद् ने स्थाई मण्डल स्थापन के लिए तथा उनके कार्य सम्बन्ध में कितने ही प्रस्ताव स्वीकार किये। हिन्दुस्तान का पुराना इतिहास ओरिएण्टियल कान्फ्रेंस के कार्य में आता है इस लिए अर्वाचीन इतिहास परिषद् ने पहले का इतिहास अपने कार्य क्षेत्र से बाहर रखा।

प्रमुख डा० शफात का भाषण लम्बा था, उन्होंने इसमें सच्चे हृदय से विनय पूर्वक उन संस्थाओं, के प्रतिष्ठित संस्थाओं तथा विद्वानों का जिन्होंने इतिहास के संशोधन का कार्य किया मुक्त कंठ से प्रशंसा की। साथ ही उन्होंने बताया कि हमारे इतिहास के लिए कौन से साधन उपलब्ध हैं, कितने का अनुभव हो चुका है और कितने ही का शेष है यह किस प्रकार करना। यह काम तो युनिवर्सिटियों की जिम्मेदारी का है।

इनके भाषण में दो चार बातें विशेष रूप से सोचने योग्य थी।

(१) इतिहास के विद्वानों को केवल सत्य बातों पर ही ध्यान देना चाहिए, इस कार्य में किसी प्रकार के रागद्वेष को स्थान नहीं है।

(२) आजकल हिन्दुस्तान के इतिहास का संशोधन अलग २

प्रान्तों में हो रहा है, इसे होने देना किन्तु इसका एकीकरण एक संस्था में होना चाहिए इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे संस्थाएं लोप हों क्योंकि महाराष्ट्र के विद्वान मराठा तथा पेशवा के समय का, द्राविड़ लोग अपना उत्तम शोध कार्य कर रहे हैं इसी प्रकार अलीगढ़ से कुछ मुसलमानों के लेख भी इस विषय पर लिखे जा रहे हैं।

(३) इतिहास के संशोधन में इतिहास के साधनों की शोध मुख्य है। परन्तु इतना ही आपका कार्य नहीं किन्तु इतिहास के साधनों की सहायता से इतिहास का अर्थ करना, यह आवश्यक है।

(४) और इसलिए अपना दृष्टि कोण किसी विशेष प्रान्त और जाति का न रख कर समस्त हिन्दुस्तान का रखना चाहिए।

इतिहास वास्तविक सत्य का चिन्तन मात्र है और इस पर केवल जाति या प्रान्त का ही नहीं वरन सम्पूर्ण देश का गर्व होना है।

अखिल भारत साहित्य सम्मेलन

नागपुर में अखिल भारत साहित्य सम्मेलन हुआ इसका उद्देश्य था हिन्दी द्वारा भारत की विविध भाषाओं के साहित्य का एक दूसरे को परिचय करवाना जिसमें १८ भाषा

राष्ट्रीय एकता के साथ भाषा की एकता का सम्बन्ध अधिक है क्योंकि यह एक दूसरे के विकास में अधिक उपयोगी है। बहुत लोगों की दृष्टि है कि समस्त भारत की एक राष्ट्र भाषा हो। एक राष्ट्री साहित्य के लिए हिन्दुस्तानी भाषा तथा तुलसीकृत रामायण ने बहुत कुछ सिद्ध किया है। किन्तु दिन प्रति दिन विकास के स्थान पर कठिनाई आरही है। हिन्दू मुसलमान के विग्रह में हिन्दी उर्दू का प्रश्न अधिक विकट हो गया है। हिन्दी और उर्दू के सम्बन्ध मे बहुत से शिक्षितों द्वारा प्रतिपादन करते सुना है कि वास्तव में उर्दू हिन्दी ही है। बादशाही लश्कर तथा बाजार मे बोले जाने वाली तथा हिन्दी के मूल रूप से ही उर्दू का जन्म हुआ है। इसका व्याकरण भी हिन्दी का है। राजेन्द्रबाबू ने कहा है कि इन दोनों भाषाओं को गूंथती हुई एक भाषा बनाना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है। इस भाषा में न तो अधिक फारसी का ही उपयोग हो और न संस्कृत का, लोक भाषा के लिए यह सलाह उपयोगी है।

(पटना मे सैयदअली ईमान की प्रेरणा से इसी प्रश्न पर एक सम्मेलन हुआ था, उस समय हिन्दू मुसलमानो का बढ़ता हुआ विग्रह तथा हिन्दी का अत्यन्त संस्कृत मय व उर्दू का अत्यन्त फारसी मय होने का कारण बताने में आया था। जहाँ अंग्रेजी भाषा का शब्द देशी भाषा मे बदलने का प्रश्न आता वहाँ संस्कृत वाले अपना और उर्दू वाले अपना शब्द बताते थे)

एक बार यही चर्चा महात्मा गांधी जी के भाषण में सुनी थी, जिस समय कविवर रविन्द्रनाथ टैगोर पधारे थे उस समय नरसिंह राव भाई ने योग्य रीति से ये विचार प्रगट करे थे कि गावों को जनपद कहकर हमारे पूर्वजों ने गावों को महत्त्व दिया था किन्तु उसे ही संस्कृत रूप मे ग्राम्य कहना आपसी झगड़े की जड़ है। सफल साहित्य तो वही है जिसे गांव का साधारण मनुष्य भी समझले।

जो साहित्य उच्च संस्कारी लोगों को आनन्द देता है वही दूसरे रूप में गाँव के लोगों के हृदय में भी पहुँच सकता है। जिस शांकरवेदान्त को उच्च सस्कारी लोगों ने ग्राह्य कर के प्रगट किया वही दूसरे रूपान्तर मे कबीर इत्यादि संतों ने लोक ग्राही बनाया। इसलिए साहित्य तो ऐसा हो जो गांव के लोगों तक पहुँच जाय परन्तु साथ ही पाठशालाओं में शिक्षा उच्च भूमिका द्वारा होना चाहिए, सीधे २ भजनों के प्रचार होने चाहिए जिससे वहाँ के लोगो को इसमें रस मिलेगा और दिन प्रति दिन भाषा की भी उन्नति होगी। हमारा गाव के प्रति कर्तव्य थोड़े नहीं किन्तु बहुत कुछ सोचने का है। दूसरी बात गाँधी जी ने इस सम्मेलन में रस के ऊपर की ही थी कि आजकल यह निर्लज्ज तथा उच्छृंखल सा रूप बहुत अधिक बढ़ रहा है, इसे लिखने वाले यह कह कर कि 'वर्तमान समय स्वतन्त्रता का है' अपनी रक्षा करते हैं। हाँ, एकाध स्थान पर कहा गया है कि शृङ्गार रस प्रधान रस है। दूसरे रस को देखते हुए इस रस को संसार के ग्रन्थों में प्रथम पंक्ति मिली है वह है शृंगार रस का नाटक शकुन्तला। यही नहीं किन्तु ईलियड, उत्तर राम चरित, महाभारत, अरेबियन नाइट्स तथा पिकविक पेपर्स के जगत में भी इसकी प्रधानता है।

इसलिए अब लोक प्राप्त योग्य मार्ग पर चलकर गाँव के [illegible] का यत्न करना चाहिए प्रान्तिक साहित्य सम्मेलन, और [illegible] समितियों ने इसके लिए अवश्य प्रयत्न करने की [illegible] है।

अबतक ऐसा ख्याल था कि यह संस्था केवल पूना निवासियों के हित के लिए है लेकिन यह भूल है इस विश्व विद्यालय से सभी स्थानों क लोग लाभ उठा सकते हैं।

गुजराती स्त्री शिक्षा और महाराष्ट्रीय स्त्री शिक्षा दोनों में परस्पर सभाव होना चाहिए। गुजरात में अहमदाबाद, सूरत, बम्बई आदि में स्त्री शिक्षा का पर्याप्त प्रचार है, परन्तु अब स्त्री शिक्षा की दो तीन पद्धतियों पर विशेष कार्य होना चाहिए। सब से पहले सरकारी स्त्री शिक्षा है जिसमें बम्बई यूनिवर्सिटी की मेट्रिक परीक्षा होती है। यह शिक्षा केवल अमीरों के काम की है। दूसरी पद्धति वनिता विश्राम के पाठशाला की परीक्षाओं में दिखाई देती है लेकिन यह सरकारी स्त्री शिक्षा जैसी नहीं है, इसमें पश्चिमी प्रभाव का अभाव है। यह स्त्री शिक्षा कुछ विशिष्ट वर्ग की स्त्रियों के काम की है जिसमें हमारे देश की विशेष संस्कृति व्यक्त होती है। एक तीसरे प्रकार की शिक्षा वह है जिसमें सरकारी पद्धति की शिक्षा और वनिता विश्राम की पाठशालाओं की शिक्षा का मिश्रत रूप मिलता है। अहमदाबाद में शारदा बहन ने ऐसी ही शिक्षा का प्रचार किया। प्रो० कर्वे की युनिवर्सिटी इसी प्रकार की पूर्व और पश्चिम दोनों ही दृष्टि कोण को लेकर चलने वाली संस्था है। इसके द्वारा गुजरात मे स्त्री शिक्षा के प्रचार में बडा बल मिला है।

इसकी शिक्षा का माध्यम भी मातृ भाषा रखी गई है, यही इसकी सबसे बडी विशेषता है। यही युनिवर्सिटी एम० ए तक मातृ भाषा में शिक्षा देने वाली प्रथम संस्था है जिसमें स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली है।

———

आपणी केलवणी नी पुनर्घटना

गांधी जी ने शिक्षा की पुनर्घटना करने के लिए एक परिषद् बुलाई, उसके समक्ष अपने विचार प्रदर्शित किये और प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी विषयपर विचारकर अभ्यासक्रम पाठ्यक्रम बनाने के लिए एक कमेटी बनाई। कमेटी ने अभ्यास क्रम तैयार किया और उसे प्रकाशित किया। कांग्रेस राज्य के प्रान्तों को इसे स्वीकार करने का कर्तव्य उत्पन्न हुआ। बम्बई के मन्त्री मण्डल ने इससे सम्मति दी तथा कुछ हेरफार कर इसे अपने हाथ में ले लिया और स्थानों पर पूर्वोक्त कमेटी ने आजमायश करने की इच्छा प्रगट की।

हम मानते हैं कि हस्तकला की शिक्षा तथा दूसरे धन्धों के शिक्षण स्वरूप ध्यान में लें दोनों में भेद करना चाहिए। इस प्रकार के अभ्यास क्रम को वर्धा कमेटी ने किया जो इसे देखते हुए सरल तथा घटन हो जाता है।

इस प्रकार गांधी जी का वर्धा कमेटी के साथ कितना ही तात्विक भेद है फिर भी मतभेद को भूलकर मिलना ही अच्छा है।

कितना ही विषयान्तर हुआ किन्तु स्वरूप प्रगट करने के लिए यह आवश्यक था। माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिए कल्पना करना अधिक कठिन नहीं है।

प्राथमिक शिक्षण से कुछ ही फेरफार तथा उसका रूप सुधार कर माध्यमिक शिक्षण का रूप माध्यम श्रेणी के साधारण लोगों के लिए हो सकता है।

तीसरा उच्च शिक्षण का रूप उच्च बुद्धि वाले तथा आर्थिक अनुकूलता वालों के लिए। इसे उच्च तथा विशाल दृष्टि से देखने का काम है। इसका अर्थ केवल डिप्लोमा या डिग्रीतक ही सीमित नहीं वरन इन शिक्षाओं में योग्य रूप से राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए फेरफार होना चाहिए और इसके द्वारा शिक्षार्थियों के हृदय में मानवता की भावना जागृत होना चाहिए।

अब तो एक ऐसी युनिवर्सिटी की आवश्यकता है जो राष्ट्रीय भावना को प्रधानता देती हुई देश की शिक्षा को सच्चा स्वरूप दे। बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी की स्थापना हुई, उसमें मालवीय जी की अनुपम कृपा से इस प्रकार की औद्योगिक शिक्षा का विकास हुआ जिसकी देश को आवश्यकता थी। सबसे पहले देशाभिमान, देशभक्ति और प्राचीन भारतीय संस्कृतिका दर्शन यहीं से होता है। तबसे अब तक वैसे तो समाजके विचार और भावना में कितना ही विकास होगया है फिर भी अभी यह युग बालक रूप में है और इसका पालन पोषण करना हमारा कर्तव्य है।



युनिव्हर्सिटिना शिक्षितजनो

कोई सोचते होंगे कि युनिवर्सिटी के शिक्षितों के सम्मुख 'नालायकी' की फरियाद अपने ही देश में है किन्तु ऐसा नहीं यह

फरियाद इङ्गलैण्ड तक में है। वैसे यहाँ की युनिवर्सिटी के विद्यार्थी यहाँ से अधिक कार्य कुशल हैं। ऐसी फरियाद केवल भूलों को बताती हैं और हमें सत्यांश में फरियाद की मूल में छिपी भूलों को सुधारना चाहिए।

आज मैंने दो भाइयों को आपस में अंग्रेजी के विरुद्ध गुजराती भाषा द्वारा शिक्षा के प्रश्न की चर्चा करते सुना। इस चर्चा के अन्तर्गत एक भाई ने दूसरे से कहा--सत्तर वर्ष की अंग्रेजी शाला का विद्यार्थी अपने यहाँ के विद्यार्थियों को देखते हुए कितना अधिक चालाक और कार्य कुशल होता है। मैंने बीच में पड़कर कहा—क्षण भर एक कल्पना करो, इंगलैण्ड की सब शालाओं में गुजराती द्वारा शिक्षा हो और फिर देखे कि अंग्रेज विद्यार्थी कितने चालाक तथा कार्य कुशल रहते हैं।

यहाँ के विद्यार्थियों को सब प्रकार का ज्ञान उनकी मातृभाषा द्वारा ही मिलने की सरलता है और साथ ही उन्हें अपनी वर्तमान संस्कृति का ज्ञान भी मिलता है। हमारे विद्यार्थियों को यहाँ गले में पत्थर बाँधकर तैरना पड़ता है, भाषा पराई तथा संस्कृति भी पराई।

इससे यह नहीं समझना कि इनकी संस्कृति और भाषा को

निकाल देना चाहिए। आज इस कार्य के लिए देश युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों की ओर देख रहा है।

काव्यविषे रवीन्द्रनाथ

हिन्दू युनिवर्सिटी में उपाधिपत्र वितरणोत्सव के समय डा० रवीन्द्रनाथ ने अपना भाषण काव्य के विषय में दिया था। उस विषय में उन्होंने मुख्य तीन बातें कहीं उन्होंने काव्य के लक्षण बताते समय सबसे पहले कहा था—

To give a rhythmic expression to live on a colour ful back ground of imgination

इतने थोड़े शब्दों में काव्य का स्वरूप बतलाने वाला हमने नहीं देखा। उन्होंने कहा--

(१) काव्य का शरीर है उसमें प्रमुख छन्द हैं—उसमे मात्रा मेल हो, अक्षर मेल हो और साथ ही ज्ञात-अज्ञात वृत्त की छाया हो।

(२) काव्य में जीवन का उच्चार होना चाहिए। मेथ्युआर्नोल्ड ने जीवन की समालोचना को कविता कहा है। इसके उपरान्त कितने ही लेखकों ने अंग्रेजी में लेख लिखे किन्तु उनमें ये लक्षण नहीं मिलते। इन लक्षणों की अपूर्णता ही है। डा० रवीन्द्रनाथ ने काव्य को जीवन की विवेचना नहीं किन्तु उच्चारण कहा है। इतने से ये आक्षेप इनके लक्षणों में लागू नहीं होते।

(३) तीसरे काल की अन्तिम भूमिका कल्पना के रंग से रंगी हुई पूर्ण होना चाहिए अर्थात् कल्पना की दीवार पर काव्य का वातावरण अवश्य होना चाहिए।

आगे डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था सबसे बड़ा कार्य सृष्टिसौंदर्य से मनुष्य जीवन को उन्नत तथा शिक्षित बनाने की शक्ति में है। यह बोलते हुए उन्होंने जो मेघदूत के रहस्य की कल्पना बताई वह रमणीय है। वह सृष्टिसौन्दर्य के रम्य प्रदेशमें से साधारण गाँव की भूमिका में आगया है जिसकी वनलीला का दृश्य असाधारण है।



इतिहास नुं तत्व चिन्तन

श्री नवलराम जी की प्रसिद्ध पंक्तियों से 'इतिहासकी आरसी' ये शब्द लेकर बहुत वर्ष हुए तब संसार के इतिहास पर एक लेख लिखना आरम्भ किया था। इसके चार खण्ड लिखे किन्तु आगे लिखते मुझे लगा कि 'इतिहास की आरसी' ये रूपक ही बुरा लिया है। इस से मन्दोत्साह हो निबन्ध अधूरा ही छोड़ दिया। जगत के पदार्थों को निस्सत्व तथा नश्वर स्वभाव दिखाने के लिए यह रूपक ठीक है। इतिहास में जो गम्भीर अर्थ तथा कार्य कारण भाव की घटना रहती है वह इसमें स्पष्ट नहीं होती।

इतिहास अमरग्रन्थ बनाने वाली पुस्तक नहीं है। जिस प्रकार प्रकृति के बनाये कार्य क्रम नियमों में बंधे हुए हैं उसी प्रकार इतिहास मनुष्य से ऐसे ही नियमों से सम्बन्धित है। प्रकृति को देखते हुए, मनुष्य अधिक अद्भुत है और इसका मानसिक गठन अधिक दुर्गम है। इसीलिए इसकी कृतियाँ अधिक चमत्कारक तथा गूढ़ होती हैं किन्तु वस्तुतः ये कार्य कारण के नियमों के बाहर नहीं है। यही कारण है कि इसकी शोध करना हमारा कर्तव्य है।

इतिहास जगत के महान् पुरुषों के जीवन चरित्र का समुदाय है किन्तु ऐसा नहीं, क्योंकि इसमें वे कार्य जो भूत में हो

चुके हैं, गहराई में उतरने से स्पष्ट नहीं होते। ज्वाला मुखी फटता है और चारों तरफ की भूमि पर असर करता है किन्तु उसे केवल ज्वालामुखी नाम देने से ही कार्य नहीं चलता किन्तु आग कहाँ से आई है? यह कैसे बनते हैं? इत्यादि भी कारण हैं, इनको जानना आवश्यक है। इसी प्रकार महान पुरुष उसम तथा इसके पीछे के युग पर असर करते हैं। पिता पुत्र से बड़ा हो लेकिन उसके हृदय में उसके लिए आशा तथा विश्वास स्थान पाये हुए रहते हैं। केवल इतिहास का काम महान पुरुषों का जीवन चरित्र खुलासा करना ही नहीं है यह तो अधूरा अन्वेषण है।

अब इस मत से उलटा मत ऐसा है—भूमि रचना वगैरह आसपास की जड़ प्रकृति इतिहास के तालेखोलने की ताली है। यह शैली पिछली सदी में इतिहास चिंतक बकले ने चलाई थी। इन्होंने यह बताने का प्रयत्न किया था कि भूमि रचना तथा आबहवा से देश की प्रजा के गुण बधे हैं। यही नहीं किन्तु इनके धार्मिक विचार, साहित्य की कल्पना, राजकीय संस्था तथा सामाजिक रिवाज सब ही बधे हुए हैं। अब यह नियम नहीं चलता कि जिस देश में जैसी आबहवा हो वहाँ के लोगों के स्वभाव उसके आधार पर हो या स्वभाव का असर भूमि पर हो। अब प्रकृति के जड़ नियमों से चैतन्य का विकास स्पष्ट नहीं होता।

तीसरा मत है—मनुष्य का इतिहास इसकी सामाजिक तथा राजकीय संस्थाओं से ही निर्मित है किन्तु ऐसा नहीं क्योंकि संस्थाए स्वय मनुष्य की कृतियाँ हैं और ये मनुष्य की आन्तरिक स्थितियों की आवश्यकताओं को पूरा करने लिए बनती हैं। संस्थाओं को कारण रूप मानने के साथ मनुष्य स्वय ही कारण रूप होता है। इतिहास संस्थाओं में से फलित होने के पहले ही, संस्था इतिहास में से उत्पन्न हुई है। रूस का कहना है कि

मनुष्य ने जो संस्थाएं उपजा रखी हैं यही उसके दुःख का कारण है। इसलिए ये संस्थाएं नष्ट हो जाना चाहिए और अंग्रेज लोग कहते थे कि मनुष्य को सुखी होने के लिए संस्थाओं का सुधार होना चाहिए।

चौथा मत तत्व चिन्तकों का ऐसा था कि प्रत्येक संस्था मनुष्य की परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के कारण ही उत्पन्न होती हैं। और उत्पन्न होते समय वे संस्थाएं अच्छी होती हैं बाद में फिर नई परिस्थितियों के लिए नई संस्था होना चाहिए और पुरानी संस्थाओं को तोड़ कर नई संस्था को नया रूप देना चाहिए। उन्होंने कहा—ये संस्थाएं आज चाहे नहीं किन्तु भविष्य में समाज सुधार में सहायक होंगी।

पांच संस्थाओं को इस प्रकार परिस्थिति का कारण मान लेना ठीक है किन्तु एक बात यह नहीं भूलना है कि मनुष्य कोई मिट्टी का ढेला नहीं है, जो कि चाहे जैसा बन जावे। परिस्थिति कोई मनुष्य के आसपास नहीं बांटती। जिस प्रकार पेड़ को जल वायु तथा सूर्य इत्यादि बाहर के पदार्थ जीवन देते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के अन्दर घुस कर उसके जीवन पर प्रभाव डालते हैं और इसी प्रकार जीवन स्थिति आरम्भ होती है। ग्रह, द्रव्य, राज्य, साहित्य तथा कला इत्यादि के द्वारा ही इतिहास बन सकता इसमें कोई राजनीय, कोई आर्थिक और कोई सामाजिक स्थिति को विशेष महत्व देते हैं। इसलिए इनका ही थोड़ा व विवेचन कर सन्तोष मान लेना ही सहल है।

जो इन्हें के इतिहास में राजनीय स्थिति को प्रधानता देते हैं, यह स्पष्ट है। राजा की तथा प्रजा की स्थिति सर्दी के अधि-कार, राज्य के निजी राजा के व्यवहार तथा दूसरे राष्ट्रों के [illegible] के सम्बन्ध इत्यादि ने देश के इतिहास पर प्रभाव डाला है। इसे भी [illegible] है। [illegible] तथा [illegible] इस प्रकार [illegible]

एक दूसरे से रहता है इसलिए राजा के धार्मिक विचारों का प्रभाव ही प्रजा पर पड़ता है। आम प्रजा के धार्मिक विचार राजकीय स्थिति द्वारा ही बनते हैं।

(२) देश का सबसे बड़ा बल आर्थिक बल है। आर्थिक बल महत्त्व का कितना है इसके लिए आज की देश की आय व्यय स्पष्ट कर देती है। प्रजाओं की आर्थिक स्थिति ही राजकीय स्थिति का प्राण है।

(३) आर्थिक उन्नति सामाजिक उन्नति के बिना नहीं हो सकती। जन समाज पूर्ण रूप से एक दूसरे के साथ बन्धा हुआ कार्य करे तभी आर्थिक उन्नति हो सकती। जिस प्रकार चरिश्र कयों का शरीर चार वर्णों द्वारा बाँटा और फिर उन चार वर्णों से चौरासी जातियाँ हुईं और अब उनकी भी जातियाँ हो गईं। प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक और राजकीय स्थिति पर प्रधानता सामाजिक की ही रहती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जुदी २ प्रजा का अलग २ इतिहास हुआ है और इस इतिहास के परिणाम से अलग २ सरकार पड़ते गये तथापि मनुष्य भाव में ये समष्टि चैतन्य समाया है और इसका आना जाना इतिहास में हुआ ही करता है। यह समष्टि चैतन्य जड़ प्रकृति नही है। यह तो ससार में पूर्ण रूप से व्याप्त चैतन्य अन्तर्यामी है। यह देश काल तथा स्वभाव के रूप में उपाधि धारण कर इतिहास में प्रगट होता है। यह रासेश्वर की लीला स्वन्तत्र है किन्तु उन्मत नहीं।

इसकी लीला में अमुक नियम प्रगट होता है, इसे समझना और मानव उन्नति का रास गूथते चलना, वेद प्रत्येक गोप गोपिका का कर्तव्य तथा अधिकार है।

———

छठी गुजराती साहित्य परिषद अहमदाबाद

सत्कार मण्डल ना प्रमुख तरीके नुं भाषण

छठी गुजराती साहित्य परिषद करने वाले अहमदाबाद के साहित्य प्रेमियों की तरफ से सत्कार मण्डल के प्रमुख श्री आनन्द शंकर बापू भाई ध्रुव ने स्वागत करते हुए अपना भाषण आरम्भ किया उन्होंने कहा—स्वागत करते समय मुझे आज अत्यन्त आनन्द हो रहा है क्योंकि अखिल विश्व के वर्तमान अग्रगण्य कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर स्वयं मेहमान के रूपमें पधारे हैं। इनको देखते ही मेरा हृदय श्रद्धा से भर जाता है। मैं परिषद की ओर स्वागत कर प्रणाम करता हूं। आपके आने से यह गुजरात इस प्रकार खिलेगा जिस प्रकार वसन्त आने से वन लक्ष्मी खिलती है। आपके मिलते ही पंचवटी का राम भरत मिलाप स्मरण हो आता है।

आगे श्री ध्रुवजी ने स्वागत उपरान्त कहना आरम्भ किया।

बहनो तथा भाइयो ! मैं इस समय आपके सामने अहमदाबादके लम्बे ? यशोगान नहीं गाऊंगा। वैसे तो यह नियम है कि जहां परिषद होती है वहां की भूमि स्तुति करने का सामान्य नियम है। लेकिन हिन्दुस्तान के इतिहास में जिसे प्राचीन कहते हैं ऐसी यह नहीं है। आज के इतिहास में महात्मा जी के भी [illegible] का इतना स्थान नहीं है जितना मान 'नवजीवन' तथा '[illegible]' का है।

[illegible] तथा [illegible] वर्तमान समय [illegible] साहित्य चर्चा करने के लिए [illegible] है। [illegible] करने की [illegible] नहीं परन्तु [illegible] है [illegible]

के समय में सबके हृदय में साहित्य प्रेम हो ऐसा नहीं हो सकता लेकिन साहित्य रस ऐसा है कि प्रत्येक रूप से उसका होना देश की राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक है। समाज चाहे इसमें रस न ले किन्तु हमें तो वही कार्य करना है जो हमारा कर्तव्य है। कवित्व रस से तथा कविता के प्रभाव से बड़े २ कार्य सम्पन्न होते रहे हैं और सदा कविता से जन समाज का उद्धार होता रहा है सरस्वती की कृपा से कवि का कवित्व राष्ट्रीयता की स्वतन्त्रता होने पर अवश्य ही मान पाता है होमर के वीर पात्रों का अनुकरण करके ही अलेक्जेन्डर विषय विजयी हुआ। शिवजी तथा वीर राजपूत लोग रामायण तथा महाभारत की कथाओं का के आधार पर ही देश का उद्धार कर सके। बंकिम चन्द्र के एक काव्य ने सारे भारत को एकता का पाठ सिखा दिया। हमारे आज के मेहमान कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की अलौकिकता भी उनके कवित्व शक्ति से कारण है। वास्तव में हमें अपने आने वाले युग के लिए कवि और कविताओं की बहुत आवश्यकता पड़ेगी। समस्त ज्ञान तथा साहित्य जैसा चैतन्य की स्वाभाविक क्रिया है और समस्त जगत ज्ञान तथा साहित्य में से उत्पन्न होता है।

समाज मे चैतन्यता भरने के लिए, युग का आह्वान करने के लिए, नये युग के स्वप्न देखने के लिए कविता की आवश्यकता है। इतना ही नहीं किन्तु इस युग की क्षणिकता को भेदकर, इस युग से पार जाकर, जीवन के सनातन सत्य को प्रगट करने वाला कवि अवश्य चाहिए।

कवि जनता का मुख है। नये जीवन के सूक्ष्म, सुन्दर, तथा संस्कारी बनाने के लिए कवि प्रतिभा रूप में अवश्य चाहिए। यह गम्भीर सत्य है कि कवि जीवन की समालोचना कर उसे शुद्ध बनाता है। ऋषियों के मन्त्र युग परिवर्तन कर सकते हैं और युग के प्रधान गान उसे पूर्ण करते हैं। गृहजीवन के लिए भी

गीतों की आवश्यकता पड़ती है। वे ही गीत हमारे जीवन को सफलता तथा विकास देते हैं और ये सब कुछ हमें बिना कवि प्रतिभा के प्राप्त नहीं हो सकते। अस्तु साहित्य की उपयोगिता स्वीकार कर, क्या साहित्य-परिषद् कवि और विद्वानों को जन्म दे सकती है? इसका दावा इस संस्था ने कभी नहीं किया और न करती है किन्तु आषाढ़ के मेघाच्छादित बादलों को देखकर हमें अवश्य यह आशा हो जाती है कि ये बरसेंगे। जनसमाज के चैतन्य का विकास सब प्रकार से साहित्य विकास के अनुकूल है।

इस कार्य के लिए परिषद् का कर्तव्य बहुत बड़ा है, इस कार्य की रूपरेखा परिषद् निश्चय करे ऐसी हम अहमदाबाद के साहित्य प्रेमियों की इच्छा है। लेकिन कुछ ऐसे कार्य हैं जिनके बिना हुए हमारी आकांक्षा सफल नहीं हो सकती।

✓(१) गुजराती भाषा का कोष तथा व्याकरण।

✓(२) कोष तथा व्याकरण से भी अधिक महत्व है इतिहास का। इतिहास ऐसा होना चाहिए जिसे प्रत्येक बालक रस से पढ़ सके, विद्वान मनन कर सके और साधारण जनता उसे समझ सके। विशेषकर आज ऐसे इतिहास की आवश्यकता है जिससे शोध कार्य भी सफल हो जाए। आज तक जितने विद्वानों ने इसके लिए कार्य किया वह धन्यवाद किन्तु अब हमें और भी संस्थाओं की आवश्यकता है। जैसे—

✓(१) प्राचीन गुजराती साहित्य प्रकाशक मण्डली, जो गुजराती व्याकरण, कोष तथा भाषा शास्त्र की रचना करे।

✓(२) प्राचीन गुजरात तथा उसके साथ सारे हिन्दुस्तान के इतिहास की प्रकाशक तथा संशोधक मण्डली।

✓(३) एक विद्वान प्रकाशक मण्डली।

[illegible] गुजरात के विद्वान का परिचय हो सके व आने वाले युग के विद्वान [illegible]।

इन सब बातों के अतिरिक्त एक और भी आवश्यकता है वह है प्रत्येक प्रान्त में अलग २ स्वदेशी भाषा का कॉलेज।

मैं समझता हूँ कि इन विषयों पर सब लोग गम्भीर हृदय से सोचेंगे। अपनी शिक्षा के साथ दूसरे देशों की भाषा में भाषान्तर होते रहना चाहिए। अपने राष्ट्र और भाषा के विकास के लिये दूसरे भाषान्तर को लेना कोई बुरा नहीं है। मनुष्य जीवन में उपयोग करने योग्य असख्य प्रसग अपने समक्ष अखण्ड धारा में बहते रहते हैं किन्तु हमारी दृष्टि इतनी निर्बल तथा हाथ कंपित रहते हैं जिसके कारण उनको हम पकड़ नहीं पाते। लेकिन जब इनका प्रवाह तेज हो जाता है, तरगें जोर २ से उछलती हैं तब हमारी आँखें खुलती हैं और आपकी अनिच्छा होते हुए भी कितने ही जीवन के प्रसग हाथ में तथा गाड़ी में आकर गिर पड़ते हैं, अगर ऐसे समय आप जगते नहीं हुए तो सब नाड़ियाँ रुधिर हीन हो जाती हैं। किन्तु ऐसा भय रखने की आवश्यकता नहीं। जब आज हमारे हृदय में प्रत्येक भावना जागृत है तब साहित्य प्रदीप कैसे मन्द हो सकता है।

चौथी गुजराती साहित्य परिषद्

चौथी गुजराती साहित्य परिषद् आरम्भ हुई तथा समाप्त हुई। इसने क्या कार्य किया है? इसका उत्तर अलग २ दृष्टिकोण से मिलता है अगर इस प्रकार की परिषद् ने कोई अपराध भी किया हो तो वह क्षम्य है कारण अज्ञानता से बचपन में जो अपराध होते हैं वे अपराध नहीं कहे जाते। क्योंकि इसका अभी बचपना होने से खेलने और पढ़ने का समय है। अगर इस पर कोई दोष लगाते हैं तो वे न्याय आसन से गिरते हैं तथा परिषद के हृदय को दग्ध करते हैं।

जो कर्त्तव्य आपका अपने बालक के प्रति है वही कर्त्तव्य आपका अपनी बाल संस्था के प्रति है। बालक के शारीरिक और मानसिक गुण रात दिन कटुवाणी से खिलते नहीं हैं, इनको विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण हृदय चाहिए। इसका समय अभी खेलने का है इसलिए खेलने देना चाहिए लेकिन अर्थहीन, उद्देश्यहीन खेल नुकसानदायक है।

इस चौथी साहित्य परिषद में खेल बहुत थे लेकिन उसके साथ गम्भीर कार्य भी हुए थे इस कारण यह खेल भी सफल था।

इस साहित्य परिषद में कितने ही लोगों ने अपने २ निबन्ध पढ़े किन्तु इसमें बहुत से तो ऐसे थे जो बहुत ही लम्बे थे कितने ही रसहीन थे। ऐसे लेखक इस प्रकार के स्थानों में मामूली सा निबन्ध पढ़कर स्वयं अपनी प्रसिद्धि को कम करवाते हैं क्योंकि सम्मेलन जहाँ प्रसिद्ध करने में सहायक होता है वहाँ अप्रसिद्ध भी इसी प्रकार करता है।

इस परिषद में प्रमुख श्री की तरफ से विज्ञान साहित्य के लिए भी बोलने में आया था, उन्होंने कहा था केवल विज्ञान नाम पढ़ने से ही इसका प्रभावपूर्ण नहीं होता किन्तु इसके लिए प्रयोग शालाओं की भी आवश्यकता है। विज्ञान की उन्नति और इसके प्रति श्रद्धा बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि हमारी पाठशालाओं में 'पदार्थ' सम्बन्धी पाठ भी पढ़ाये जायें। इसके साधनों

आया तो बडी कठिनाई हुई क्योंकि सभी लेखक ग्रन्थों की ही बातें करते हैं। दुनिया के इतिहास हमारे सामने हैं उनकी तरफ नहीं। इसलिए हम इन कल्पना कल्पित स्वयं रचित ग्रंथो के स्थान पर भाषान्तर वस्तुओं को सुनें और पढ़ें तो अच्छा है। इसमें कोई बुराई नहीं है।

परिषद मे सभी प्रकार के बड़े २ विद्वान् होते हैं इसलिए दूसरी परिषद तक का कार्यक्रम तैयार हो जाना चाहिये और इस कार्य को हमारे ग्रेजुएट विद्यार्थी पूर्णरूप से कर सकते हैं जिससे शीघ्र ही साहित्य का विकास हो सकता है क्योंकि आज देश के स्तम्भ ये ही तरुण युवक और विद्यार्थी हैं।

बारमुं गुजराती साहित्य सम्मेलन

गुजराती साहित्य परिषद का १२ वाँ सम्मेलन तारीख ३१ अक्टुम्बर १९३६ ई० को अहमदाबाद में हुआ, इसके प्रमुख श्री गाधीजी थे।

यह सम्मेलन अनेक प्रकार से सफल माना गया, साथ ही प्रतिनिधियों की सख्या तथा श्रोताओं की उपस्थिति अधिक सख्या मे थी और उन लोगों में उत्साह भी बहुत भरा हुआ था। इसी के साथ रविशंकर जी रावल के चित्रों का भी सफल प्रदर्शन हुआ था। कला की दृष्टि से यह चित्रों का प्रदर्शन उचित था। इस कला प्रदर्शन के उपरान्त कथाओं के गरबे, कवि सम्मेलन तथा मुशायरा बडे मनोरजक तथा सफल रूप म हुए।

इसमें 'उच्चारण' के प्रश्न पर फिर कमेटी बैठी। हम तो समझते थे कि आठों परिषद् से यह प्रश्न समाप्त हो गया होगा। वैसे साहित्य उत्कर्ष के साथ इसका कोई मूल्य नहीं है।

सम्मेलन को गम्भीर दृष्टि से देखते हुए इसमें पढ़े गये विद्वानों के निबन्ध अच्छे थे। विभागीय प्रमुख का भाषण तो अच्छा था किन्तु किसी किसी के बहुत लम्बे था यह कि अमुक बात से हमारा मतभेद है, इस प्रकार के प्रश्नों को लिए हुए थे। विचारक की दृष्टि से सब ही निबन्ध अच्छे थे।

'नवीन दिशा सूचना' यह सम्मेलन की मुख्य कमी थी इसका अपवाद केवल गाँधीजी का भाषण ही था किन्तु इसमें समय का अभाव होने से कई दिशा में प्रस्थान न हो सका।

सम्मेलन में 'बंधारण' के लिए एक कमेटी की नींव रखी अच्छा होता अगर यहाँ नींव साहित्य परिषद के भविष्य के कार्य के लिए रखी होती।

तेरमुं गुजराती साहित्य सम्मेलन

तेरहवाँ गुजराती साहित्य सम्मेलन श्री कन्हैयालाल मुन्शी की अध्यक्षता में करांची में हुआ था। अधिष्ठाता के रूप में मुन्शीजी का भाषण बहुत ही ओजीला प्रशस्ति भाषण था। इसमें मुन्शीजी ने पूर्ण विचारक की तरह आज तक के अपने विचार स्पष्ट रूप से रखे थे। कई लोगों ने इसके विरुद्ध ही आक्षेप

भारत के अभेद दर्शन मे विघ्नडालने वाली योगसूत्र, की जिसमें से मुन्शी जी ये शब्द खींच लाये हैं, स्वराज्य वृत्ति मे इसकी गणना करते है। यह भय उनके मस्तिष्क से बाहर नहीं है इसलिए स्वयं चेतावनी के रूप मे कहते हैं "ऐसी भावना जो प्रान्तीयता की सिद्ध के लिए हो वे अवश्य सकुचित होन हुए भी राष्ट्र विधान में आड़े मे आते हैं। हिन्द जैसे विशाल देश मे जहाँ सामाजिक धार्मिक मतभेद है वहाँ प्रांतीयता ही राष्ट्रीयता को सिद्धि पर पहुँचाती है।"

उनके ये शब्द यहाँ इसलिये दिये गये हैं कि ऐसा न हो जिससे प्राँतीयता के कारण समस्त देश की एकता में मतभेद उत्पन्न हो जावे। आगे मुन्शी ने कहा है—इस व्यक्तित्व के युग मे नदी और पर्वतों के स्थान गौण हैं। मुख्य स्थान तो उन महा-पुरुषो का है जिन्होंने गुजराती भावना को उपजाया है। बाद में उन व्यक्तित्व वाले पुरुषों की गणना है जैसे सिद्धराज जयसिंह, हेमचन्द्राचार्य, नरसिंह मेहता, मीराबाई, प्रेमानन्द, नर्मद तथा गांधीजी। इसका तात्पर्य यह नही कि दूसरे प्रान्तों मे इन पुरुषो का आदर नही होता है।

दूसरा भाग मुन्शी जी का है—साहित्य में व्यक्तित्व। इसमे आते हैं होमर के अकीलीस और हेक्टर, वाल्मीकी कि रामचद्र, कालिदास की शकुन्तला, भागवत के श्री कृष्ण इत्यादि। इस छोटे लेख में इतने ही उदाहरण बहुत हैं। श्रीलोकमान्य तिलक ने मुन्शीजी के लिए कहा था कि अगर ये राजनीति में नही पड़ते तो गणित के शास्त्री बनने की इनकी इच्छा थी।

श्री मुन्शी जी धनदायी कार्यों की अपेक्षा साहित्य सेवा करने में अधिक आनन्द मानते हैं। पहले भाग की तरह इसमे भी मुशीजी ने चेतावनी दी है उन्होंने कहा है—व्यक्तित्व पूर्ण कवि का हृदयोद्गार या कवि का पात्रालेखन ऊर्मि काव्य, नाटक उपन्यास और वीर महा कथा को ऊचा काव्य देता है

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझना कि इस प्रकार के हृदयोद्गार हों तभी काव्यत्व आता है। अगर दो शब्दों में कहें तो व्यक्तित्व काव्य में उत्कर्ष की साधता है। बहुत से काव्यों का आनन्द व्यक्ति सृजन में नहीं किन्तु सुन्दर वातावरण उपस्थित करने में ही होता है। हम कहानियों उपन्यास की कीमत आँकने में भूल करते हैं क्योंकि उसके साथ पात्रलेखन, व्यक्तिसृजन इत्यादि उपन्यास की कलाओं पर विचार न कर कह देते हैं कि यह अच्छा और यह बुरा है।

अब यह प्रश्न है कि यह सम्मेलन सफल रहा अथवा निष्फल? इस प्रश्न को लेकर अहमदाबाद के साहित्यिकों में चर्चा चली थी, सबने अपना अपना दृष्टिकोण रखा था। हमने तो यही माना जो मुंशी ने कहा कि—"ज्यों ज्यों बसे एक गुजराती त्यां त्यां सदा काल गुजरात।" यह केवल कल्पना ही नहीं वरन सत्य है, क्योंकि जहाँ साहित्य रसिक वास करते हैं, वहाँ सरस्वती प्रसन्न मुख दिखाई देती है इसलिये उस स्थान पर निष्फलता के दर्शन ही नहीं होते।

इसलिए हमें सदा ऐसी परिषदों के प्रमुख पद के लिए ऐसे ही व्यक्तियों को रखना चाहिए जो साहित्य को नई देन दे सकें. साहित्य परिषद में कविता इत्यादि का स्थान नहीं किन्तु इससे परिस्थिति में रस आ जाता है। इसी कारण से परिषद जैसे कार्य के लिए ऐसा ही व्यक्ति होना चाहिए जो इस कार्य को सफल बना सके।

विद्वत्परिषदो

पारियों की, जाति मंडलों की जो परिषदें समय समय पर होती हैं यह आनन्द दायक बात है।

इन सब परिषदों में विद्वत्परिषद हमारी शिक्षा तथा विकास के प्रति जितना ध्यान देती उतनी दूसरी संस्था नहीं देती। करीब दस वर्षों से इस प्रकार की परिषद हो रही है जिसमें प्राच्य विद्या, विज्ञान, तत्व ज्ञान अर्थ शास्त्र आदि विषयों के विद्वान प्रति वर्ष आकर मिल लेते हैं और अपने अपने विषय की वृद्धि सम्बन्धी निबन्धों को पढ़ते हैं तथा उनकी चर्चा करते हैं। साथ ही प्रेरणा तथा उत्तेजनात्मक सूचना देते हैं। इस कार्य के संगठन करने का यश किसी एक व्यक्ति पर नहीं है लेकिन देश के समस्त विद्वानों को है। विशेष कर अगर व्यक्तिगत रूप से कोई विद्वान है तो वे कलकत्ता यूनिवर्सिटी के वाईस चांसलर स्व० आशुतोष मुकर्जी कहे जा सकते हैं। जिन्होंने इसमें बाद जाकर 'पोस्टग्रेज्युएट' शिक्षा का अपने कालेज में आरम्भ किया था।

इसी प्रकार विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा पर डा० कान्तिलाल ने इसमें लिखने को स्वीकार किया था।

एक समय इसके प्रमुख डा० साईमन सन ने फरियाद की थी कि हिन्दुस्तान की उच्च शिक्षा पुराने समय को देखते हुए अब गिर गई है। इसका कारण है कि शिक्षा और परीक्षा दोनों ही हल्की हो गई हैं।

ब्रिटेन इत्यादि दूसरे देशों में ग्रेज्युएट लोगों को सरकारी नौकरी करने की इच्छा कम होती है किन्तु हमारे देश में इसके ठीक प्रतिकूल होता है।

केवल विद्वत्परिषद एक ऐसी संस्था है जिसके कारण देश की शिक्षा में उन्नति हो सकती है और साथ ही देश के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा का तथा प्रत्येक विषय में ज्ञान मिल सकता है।

पारिजात

(२)

सरस्वती के प्रति

कवि सरस्वती से प्रार्थना करता है कि हे परमेश्वरी तू मेरे हृदय मन्दिर में प्रवेश कर और हे ! अद्भुत स्वरूप वाली मेरे प्रेम के सिंहासन की शोभा बढ़ा।

हे ! असीम शक्ति वाली अपने कुशलता के दिव्य शासन को फैला, और मेरी शिराओं में अलौकिक प्रभात की शुभ चेतना को प्रभावित कर।

मुझ पापी का स्वभाव दुर्बलता से भरा हुआ है। तू ऐसी कृपा कर कि जिससे हे ! भगवती सम्पूर्ण कल्याण और सफलता से युक्त होकर और नई विराट मुक्त प्रकृति के प्रभाव को ग्रहण मेरा स्वभाव तुम्हारा प्रतिरूप बने अस्तु तू मेरे हृदय रूपी कमल के सहस्र दल से विकसित हो और प्रकाश का नेत्र बन कर मुक्ति मृत्यु के गर्त से अमृत के विस्तृत आकाश में ले चल।

कुसुमों को हृदय के कुंज में विकसित होने दे और मधुर गुंजन के साथ रसिक जन रूपी भवरों से नये २ गीत गवा। इस प्रकार हृदय के विषाद को निर्मल हर्ष के समुद्र मे लीन करदे, जाने क लिए अधीर मत हो अभी अतृप्त हृदय की कविता लिख रही है, रसोन्मत्त आत्मा अभी नये छदों के झूलों पर झूलना चाहता है और अमर स्वप्न लोक को प्राप्त करके अपने को पूर्ण अमरत्व देकर अमर सगीत छेडना चाहती है।

हे! विक्षुब्ध करने वाली कल्पना और हे! लोक की सुन्दर अप्सरा तू मेरी आखों से ओझल मत हो और काव्य क झरने को स्वतन्त्रता से झरने दे।

(६)

तेरा लेखक

तू मुझे अपनी अपूर्व छन्द मयी, कल्याण मयी, सरस, सत्य पूर्ण, सुन्दर शुद्ध वाणी का लेखक बना और मेरे शान्त कर्ण कुहरों म चचल लय की नदी प्रवाहित करदे--ऐसी नदी जो अजीव माधुर्य से पूर्ण अमर काव्य का प्रसाद वितरित कर रही है।

मैं विश्व के बेसुरे कोलाहल क लिए बहरा बन गया हूँ और मैंने अपने कान केवल तेरे लिए खुले रखे हैं तू आनन्द पूर्वक किसी अमर मन्त्र की ध्वनि से दिगदिगन्त को प्रतिध्वनित करती हुई और ब्रह्म नन्द के निर्मल गान गाती हुई और स्वर्गीय स्वरों के अमर समूह को लेकर मेरे हृदय में प्रवेश कर।

मैं तेरे शब्द के स्पन्दन से अपने अग प्रत्यग को पुलकित करलू, मेरे हृदय में उस असीम की कला का प्रभाव छा जाए और हे! सखे सहज भक्ति भाव से मेरी सरल लेखनी अमर अक्षरों में सुख पूर्वक उस अदृश्य काव्य की कथा लिखे।

(८)

आकाश विहारी कवि के प्रति

हे कवि, तू कल्पना के पंखों से उड़कर इन्द्र धनुष की कमान से छूटे हुए तीर के समान आकाश में विहार कर और अमर सोम पंखुरी के रस का पान करके मस्ती में वहाँ तक उड़ जहां तक कि सुनहले सूर्य की किरणें चमक रही हैं।

तू अनन्त के हृदय में प्रवेश कर और ओस की तरल बूंदों के सदृश्य ज्वलन्त सत्य के पवित्र मोतियों में पर प्रेम के लिए उनका हार गूंथ, साथ ही कल्याणमय छन्दों में अनहद नाद गूंजने दे।

लेकिन आकाश में रस निमग्न होकर तू अपनी इस पृथ्वी माता की वेदना को क्या बिलकुल भुला देगी? स्मरण रख उसका हृदय दुख से दलित और स्नेह के कारण भरा हुआ है उसी के स्नेह से तू पैदा हुआ है और फला फूला है।

तेरी म्लान वदना पृथ्वी सदैव तुम्हारी आशा करती है तू रसमय ज्योति और अमृत के स्वरों का पृथ्वी पर उतार।

(१०)

अपानता

गया उसे देखते ही मैं तृप्त हो गया और मैंने सोचा कि मेरे भाग्य खुल गये है लेकिन मेरे पात्र में नीचे छिद्र था जिसमे से अमृत चू गया और मैं अभागा ऐसा ही रह गया।

इन पंक्तियों में नश्वर मनुष्य की असमर्थता की ओर संकेत किया गया है और बताया गया है कि वह प्रभु प्रदत्त अमरत्व की भी रक्षा नहीं कर सकता।

(१३)

आत्म विहंग के प्रति

हे आत्मरूपी श्रष्ठ पक्षी ! तू ऊपर चढ़। यहाँ अन्धकार के गहन वन में नेत्र नीचे किए गाना उचित नहीं है। तू शुभ्र आकाश की नीलिमा को लक्ष्य करके अपने पंख खोल और उड़ान भर। वहाँ सौन्दर्य की शाश्वत आभा को धारण करके नन्दन वनकी वासन्ती शोभा विकसित होरही है। परम प्रेम के कोकिल की कूक हृदय को भेद रही है जिसके कारण प्राण अभूतपूर्व आनन्द के सुन्दर राग में तल्लीन होगये हैं और मुक्त आत्मा अमृत के बिन्दुओं में जल क्रीडा कर रही है।

हे पक्षी ! तू अविलम्ब उड़, शोभा में रंगों को चुम्बन करके अपनी चोंच को रंगीन बना और रवि तथा तारकों का अतिथि बनकर मंगलप्रभात के उल्लास का आनन्द ले।

उस असीम के मूक और गम्भीर निमन्त्रण की ध्वनि को सुन और उड़ान भरकर अतल में डुबकी लगा।

(१६)

कुंठित स्वभाव के प्रति

हे ! मेरे कुंठित स्वभाव तू विस्तृत आकाश के समान असीम बनजा, और अज्ञान की दशा में रजकणों के नीचे दबा

हुआ मग्न रहे। क्रूर काल के फन्दे की दृढ़ शृङ्खलाओं को तोड़ दे तू आमंद पूर्वक दिशाओं की कन्दरा में अपने को मृत्यु के खम्भे में क्यों जकड़े हुए है? तू विराट स्वरूप धारण कर चौदह ब्रह्माण्डों को अपनी गोद में खिला, सूर्य चन्द्र और तारों में हास्य की छटा फैलने दे।

आनन्द से तरंगित महा समुद्र में ज्वार पैदा करके उसके उज्वल फेन की अमृतमयी फव्वारों से चराचर को शीतल कर दे और विश्व को दग्ध करने वाले दावानल को प्रेममय नेत्रों के दया घनों से शान्त कर दे।

देख तेरे आंगन में चिर काल से अतिथि खड़ा हुआ है। हे! कुटिल स्वभाव संकीर्णता के ताले से बन्द अपने हृदय रूपी द्वार को खोल।

(१७)

हीन की प्रार्थना

करके है। प्रभो मेरी श्रद्धामयी वियोगिनी आशा को शान्त कीजिए।

आप अत्यन्त कलुषित मरण शील मानव स्वभाव में ही अपनी पूर्णता को प्रगट कीजिए और मेरी हीनता को दूर कीजिए।

(२०)

दंडी (साधू)

हमने दण्डी व्रत लिया है, आगनक के वस्त्र पहने हैं, मोहपाश को विदीर्ण कर दिया है, दिशाओं के द्वार तोड़ दिए हैं, काल का पहरा हटा दिया है, भय के स्वप्न छोड़ दिये हैं, युगों के अन्धकार क जटिल जालों को नष्ट कर दिया है, और एकाग्र दृष्टि को सामने ध्रुव पर टिका दिया है। अपने कानों को दूसरे स्वरों से हटाकर सुदूर देश के आवृत्ति को सुनने में लगा दिया है, धीर गम्भीर पगों से किसी शान्त प्रवाह की ओर हम चले जा रहे हैं। हमने मलीन नश्वर मानव शरीर की माया छोड़ दी है।

हम दुख के पर्वतों को हथेली पर उछालते हुए ग्रीष्म ऋतु की बदली के समान भ्रम पूर्ण सुखों की तृष्णाओं को नष्ट करते हुए आगे जायेंगे, पीछे देखने के लिए नहीं मुड़ेंगे और अमर आनन्द के धाम में ठहर कर शान्त अलाप करेंगे।

(२४)

गोता खोर

निर्भीक गोता खोर उत्साह के डग भरता हुआ कमर बाँध कर समुद्र की ओर चला, उसके नेत्र प्रदीप्त थे, अंग प्रत्यंग से ओज झलक रहा था और उसकी समग्र चेतना महान ध्वनि वाली दिशा पर केन्द्रित थी।

(६७)

प्रिय जन डरे, सभी सजल नेत्रों से पीछे लौटे, समझाया,
"क्यों व्यर्थ जीवन खोते हो, तुम्हें यह कहाँ से आफत लग गई ?"
लेकिन वह दृढ़ निश्चयी किसी प्रकार न लौटा।

वह अपार और विकराल गरजते हुए समुद्र में घुस गया, पर्वत श्रेणियों के समान लहरों ने उसे अपने भीतर छिपा लिया, यह साहसी तब भी पीछे नहीं हटा और अगाध जल में—काल के गाल में प्रवेश किया।

उसने मृत्यु के अन्धकार मय तल को ढूंढा और अपार मणि माणिक्यों का कोष प्राप्त किया, उसे लेकर वह बाहर आया।

(६८)

वतन प्रेम

क्या संसार में कोई ऐसा मृत हृदय का मनुष्य होगा जिसका पुण्य स्मृति के समान प्यारे देश के नामोच्चार पर प्रदीप्त न हो उठे, गर्व से जिसकी वाणी गर्जना न कर उठे, स्नेही नेत्रों में आग की उज्वल किरण न चमक उठे। रग रग में अरुण रक्त का संचार न हो उठे और प्रसन्नता से रोम रोम में रोमांच न हो जाये ? संसार के किस कोने में भूल के ढंग में ऐसा व्यक्ति पैदा हुआ है।

और कोई ऐसी हीनता की बात करने वाला होगा तो वह अंत में भी पददलित लाश की तरह मिट्टी के नीचे दबा रहेगा और भविष्य में कोई भी उसका नाम न लेगा।

इसमें और बात है कि मनुष्य जो अपने देश को न याद करता है उसको ऐसा जाना है यह संसार के सर्वथा ही [illegible] ऐसा लोगों और का [illegible] है।

(३१)

पठान की अपने बेटे को अन्तिम आज्ञा

मेरी बीमारी बहुत लम्बी हो गई है, कोई दवा काम नहीं देती, ऐसा मालूम होता है कि यह बीमारी प्राण लेकर ही जायगी और समस्त दुख और समस्त पीड़ा कब्र में ही दूर होगी – उस कब्र में जहाँ संसार के दुख को दूर करने वाली जड़ी बूटियाँ मिलती हैं।

मेरी ऐसी इच्छा है कि अब मैं शीघ्र ही अपने देश में पहुँचूँ वह मर्दों का मुल्क नित्य ही मेरी प्रतीक्षा करता होगा, मेरा शरीर चमकते हुए देश की मिट्टी के कणों में मिलते हुए अत्यन्त हर्षित होगा। मैं गुलाम देशों की अपवित्र मिट्टी नहीं चाहता, मैं नहीं चाहता कि अन्तिम समय में अत्यन्त कंगाल धूल में अपने प्राण विसर्जन करूँ।

हे! बेटा तू शीघ्र मुझे अपने देश में ले चल जहाँ, मुलाकात के सुख को मृत्यु की गोद में तो पा सकूं, गर्वोन्नत पहाड़ों के बीच में जो स्वतन्त्र जीवन मिला है उसे मैं ज्यों का त्यों समर्पित करके उऋण हो सकूं, यही मेरी कामना है।

(३२)

चित्तौड़

हे चित्तौड़ गढ़! तू आत्म बलिदान की सुदृढ़ नींव के ऊपर रक्त और अस्थियों से चुना हुआ अचल काल के मस्तक पर खड़ा हुआ है, निर्भीक योद्धा अमर कीर्ति के अक्षरों से तेरे अपूर्व शिला लेख लिख गये हैं।

तेरे ऊपर वज्र के समान शत्रु के असंख्य घाव लगे, तेरे दृढ़ शरीर में मृत्युके मुख वाली तोपों के असंख्य गोले लगे, शत्रु के रोष

जो भयंकर प्रलयाग्नि का तूने अनुभव किया लेकिन वे सब अन्त में तुझ से टकरा कर चूर २ हो गये और तेरे अटल कोट के कंगूरे आज भी गर्वोन्नित शीश लिए खड़े हुए हैं।

तेरे वीर पुरुषों का प्रभाव ही प्रशंसनीय नहीं था वरन् तेरा अमरत्व के प्रदीप्त खंडहर भी स्वर्ग के आंगन को प्रकाशित कर गया है। हे! यज्ञ की अद्भुत वेदी के समान चित्तौड़ मैं तेरी स्तुति करता हूँ। तू अपने स्वतन्त्र प्रेम, बल टेक और त्याग की ज्वलंत भावनाएं हमारे यौवन में जगा।

(३४)

पुराने पाटण के खंडहरों में

इसी स्थान पर स्वतन्त्र गुजरात के गौरवमय प्रताप से सुशोभित वैभव शाली राजधानी थी, जहाँ योद्धाओं की वीर हुङ्कार सुनाई देती थी और जिसके कारण विदेशों में स्वदेश के यश का प्रसार होता था।

हिमालय के समान जिनके शिखर आकाश को छूते थे, [illegible] जिनके आलिंगन के हेतु दिशाएँ भी तरसा करती थीं, [illegible] के घोड़ों पर सवार होकर समुद्र के पथ विहीन [illegible] का और अभिमानी शत्रुओं को नष्ट करके [illegible] आह्वान [illegible] थे।

(३६)

शहीद श्रद्धानन्द

अपने प्रशान्त शौर्य और तेज से भारत की राजधानी दिल्ली के राजमार्ग को प्रकाशित करता हुआ वह सुमेरु पर्वत के समान खड़ा था. उसके वक्ष को बेधने के लिए खूनी हाथों ने बिजली के समान लपलपाती सगीनें धारण कीं वह उनको देखकर चुनौती देता हुआ बोला—"मेरी छाती के ऊपर गोली चलाओ या सगीनें भोंकदो।" लेकिन वहाँ ऐसा कौन था जो उस वीर के सामने उंगली भी उठा सकता? बन्दूक का कुन्दा ढीला पड़ गया विश्व की वायु लहरों में श्रद्धानन्द नाम समाप्त होगया, वीरों ने आदर से वीर की पूजा की, शत्रु धन्य २ कहने लगे।

लेकिन एक धर्मान्ध भाई ने अंधेरे में छिपकर इस निपट उदारता भरे हृदय में छुरी भोंकदी। आह! पागलपन ने दगा दिया वह शहीद हुआ आज लोग उसे सजल दृगों से स्मरण करते हैं।



(३७)

दिन आता है

इस कलह के लोक में प्रभु द्वारा प्रेरित ऊषा के रंग की आशा पर चढा हुआ शान्ति का शुभ दिन आता है, अमृत के सदृश मधुर मित्रता में शत्रुता का समस्त विष शान्त होजावेगा और विश्व युद्ध के तूफानी पंख कट जायेंगे और संहार स्वयं कब्र के भीतर चिर समाधि लेगा। समस्त विश्व के निवासी आनन्द से रंग भेद की विषमता को भूल जायेंगे, मनुष्यत्व की सामंजस्य

पूर्ण कला का विकास होगा, विज्ञान की गंगा काल निशा के अंधकार को धो देगी और यह पूर्णेन्दु की ज्योति का प्रकाश होगा।

हे! मनुष्य तू भूतकाल की चिन्ता करना छोड़दे और स्वार्थ की भूखी भावनाओं को नष्ट करदे, रक्त की प्यासी तलवार को अपने हाथ से फेंक दे और हे दुर्बुद्धि अपने ही अंगों पर तोप के गोलों की जहरीली झड़ी मत बरसा।

शान्ति का दिन आ रहा है। तू उसे हृदय के समस्त द्वारों को खोल कर अपना, जिसके कारण यह पृथ्वी तल नन्दन वन बन जाये।

(२६)

गये वर्ष का स्वर्ण प्रभात

आज प्रज्वलित उदयाचल को लांघती हुई संसार को आनन्द देने वाली स्वर्ण प्रभात की लहरें आनन्द से दूनी हुई आ रही हैं वे संसार की आँधियों रूपी हलचलों को समाप्त कर नष्ट कर रही हैं और गहन निशा में लुप्त चेतन को प्रकाश की कल्याण मयी जागृति दे रही हैं।

मनुष्य स्वर्ण सूर्य के आगमन में समस्त दुखों को भुलाते हुए जाग रहे हैं और अतीत की विषमता नम्र समता के रूप में

उदय की ओर बढ़े चले जा रहे हैं और समस्त आशाएं आकाश के ऊंचे नक्षत्रों और ग्रहों को पकड़ने जा रही हैं।

समस्त पुरातन सामग्री स्वर्गीय ऊषा की वेदी की ज्वाला में नष्ट हो गया और वह अपना प्रकाश छोड़ कर काल के गाल में समा गया।

(४३)

तुझे नमस्कार करता हूँ

मैं अपनी मनःबुद्धि के अहंकार को छोड़कर तुझ प्रस्तार प्रतिमा को नमस्कार करता हूँ और पवित्रता के प्रेम मय भाव को अपना कर तथा मुझे अपनी आत्मा का समर्पण करके हे युग २ की जड़ता स्वरूप मूर्ति मुझे नमस्कार करता हू।

विराट प्रभु की विश्व व्याप्त काया का तू एक छोटासा शुभ अंश है, तुझ में सूक्ष्म चेतन तत्व भरा हुआ है, तू उस पूर्ण ब्रह्म का सुन्दर प्रतीक है।

उस अदृश्य को हमारा हृदय ग्रहण नहीं कर सकता तू उस अकल्पनीय का स्थूल कल्पित रूप है, तेरे द्वारा ही हमारी आत्मा उस अगम का अनुभव करती है, हमारे इस वियुक्त जीव को तो उस परम ब्रह्म से मिला दे।

मैं तुझ चेतना मयी मूर्ति को नमस्कार करता हूं, मैं तुझ प्रभुता की प्रतीक रूप मूर्ति को नमस्कार करता हूं।

(५५)

कुविवेचक से

ओ कौआ तू घूरे पर विष्टा खाने के लिए जा। तू अपने कृष्ण वेश में वहाँ अधिक शोभा देगा, अपवित्र मुख से रस की

परीक्षा कभी नहीं हो सकती, सत्य और विवेककी दीक्षा तो केवल दुःख को ही मिली है।

(५६)

गुण दृष्टि

भले ही चन्द्रमा की दूसरी बेडौल बाजू शीतल मृत्यु के घोर अन्धकार से घिरी हुई सब के नेत्रों से गुप्त रहती हो और भले ही उसमें नेत्र और हृदय को हरने वाली शुद्ध स्निग्धता की कलाए विकसित न होती हों मुझे इससे कोई सरोकार नहीं मैं क्यों इस विचार से इसको कलंकित करूं।

इसके विपरीत मेरे सामने तो यह सामने की बाजू स्फटिक पत्थर के समान सुन्दर प्रसन्नता देने वाली है। यह स्नेह से सींची हुई है और समस्त संताप को दूर करने के लिए अमृत के समान है। मैं तो हर्ष से पुलकित होकर इसकी सेवा करूंगा और यदि हो सकेगा तो प्रसन्न मन से इसके सद्गुणों का गान करूंगा।

(८४)

प्रेम

हे प्रेम तू परमानन्द का प्रसाद है और [illegible] है।

(९३)

दो प्रकार संत

संत दो प्रकार के होते हैं एक तो वृक्ष के समान होते हैं जो एक स्थान पर स्थिर रहकर फलते फूलते हैं और सच्चे हृदय से समस्त सन्तप्त आगतुकों को शीतल छाया, अपने कुसुमित हृदय की सुगन्ध और सफलता के मीठे फल निष्काम भाव से देते हैं।
दूसरे बादल के सदृश्य होते हैं जो बार २ समुद्र में डुबकी लगा कर उसमें सग्रहीत अमृत रस को लाते हैं और आकाश पर चढ़ कर गर्जना द्वारा आश्वासन देकर पृथ्वी के हृदय को तपाने वाले रेगिस्तान को अमृत की धारा से शान्त करते हैं और दिग्दिगंत को हरा भरा बना घूमते रहते हैं।

(९५)

स्वतंत्रता के सैनिक

छन्द १० वाँ

शस्त्रास्त्र भले ही कम हों लेकिन हृदय में वीरता कम नहीं है, ध्रुवों की वर्फीली हवा चल रही, है समस्त द्रव जमे जारहे हैं तो भी देश प्रेम की गर्मी हृदय के उत्साह को नहीं जमने देती इसीलिए पर्वत श्रेणियों की भाँति योद्धा एक दूसरे से सटे हुए दृढ़ता से खड़े हुए हैं।

छन्द ४६ वाँ

मोर्चों पर पत्थर की मूर्ति के समान पैंतरा बदलने वाले चीन की स्वतन्त्रता के सैनिक खड़े हैं, वे अपने दृढ़ कंधों पर निशाना लगी हुई बन्दूक रखे हुए हैं, उनकी उंगलियाँ बन्दूक के घोड़ों पर जमी हैं और आँखें अपने लक्ष्य पर।

(९६)

राजर्षि शिवाजी

अन्तिम अंश—शिवाजी कहते हैं कि यदि ऐसी मनोहर कांति को धारण करने वाली स्नेह मयी मेरी माता होती तो सौंदर्य की परम पुण्य प्रभा से भरा हुआ मेरा अंग २ कितना सुन्दर होता ।

हे सामन्तो ! रथ सजाओ और उसे स्वर्णाभूषणों से भरकर इस माता को सुरक्षित अवस्था में सुख और शान्तिपूर्वक इसके घर पहुँचाओ ।

(९८)

जन्म दिन

अन्तिम पंक्तियाँ--मेरे नश्वर जीवन की क्षुद्रता मृत्यु में लीन हो जाये और मेरा जन्म दिन चैतन्य के आनन्द का अनुभव करने लगे ।

दावानल पर सावन की शीतल बदली की तरह बरस रही है, तू जीवन के रेगिस्तान के घातक वातावरण में सुखप्रद नन्दन कानन के समान है, और घोर रात्रि के अन्धकार में तू अनुपम चाँदनी के सदृश है, तू घोर पतन के गर्त में गिरे हुए के लिए उद्धार की आशा है और तू ही इस मायामय संसार को मुक्ति देने वाली है।

(१००)

कुटुम्ब

कुटुम्ब में माता की अनुपम कृपा अखण्ड अमृत की वर्षा करती है। पिता का पवित्र छाया चिन्ता और दुखों को दूर करती है, भाई की उत्साह देने वाली सहायता मिलती है, सौभाग्यवश कुटुम्ब का जो तनिक भी आनन्द मिल जाता है तो वैसा आनन्द समस्त संसार में ढूँढ़ते हुए भी कहीं नहीं मिलता।

(१०६)

आर्य विधवा

प्रारम्भिक पंक्तियाँ

हे गङ्गा रूपी निर्मल विधवा ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ, तू संसार को पवित्र बनाने वाली विभूति है, तू कठिन व्रत पालन करने वाली तपस्विनी होते हुए भी शान्त, सौम्य और पवित्रता से वन्दनीय है। मुनि निर्जन वन में सिद्धासन पर परब्रह्म का ध्यान करते हैं, अवधूत योगी गुफा के भीतर गहरी समाधि लगाते हैं, लेकिन हे अग्नि-पथ पर चलने वाली देवी तू संसार के अन्धकार में प्रज्वलित ज्योति के सदृश है।

७२ वाँ छन्द—ओ ! दुर्बुद्धि, कामी, संसारी पुरुष तेरे

सीने में वासना के कीड़े कुलबुला रहे हैं तो भी तू बहन और माता के सदृश विधवा को धिक्कारता है और शुभ क्षणों में उसके पवित्र शरीर की छाया से डरता है।

(१११)

ग्रीष्म की बदली

भले ही लोग मेरा उपहास करें, मेरे पास तो जो कुछ थोड़ा बहुत है उसी को शीघ्र लेकर अपने धर्म से प्रेरित होकर जाऊंगी। यदि क्षण भर अपनी छाया या जल से किसी के तप्त शीश को मैंने शीतल कर दिया तो ग्रीष्म के प्रकोप से जलते हुए भी मैं मन में तनिक भी दुख नहीं मानूंगी और प्रसन्नता पूर्वक अपने जीवन का अन्त कर दूंगी।

मृग मुंडक कविता का भावार्थ

इस कविता में कवि ने वधिक द्वारा हरिण के मारे जाने पर अपनी दया और करुणा की भावना को व्यक्त किया है उसने बताया है कि कोमल स्वभाव और सुन्दर अंगों वाला हिरण वन में घूमता था और वह वन देवता के सदृश निर्दोष था, निसंकोच घास से दूर चर रहा था, उछलना कूदना भागना और घूम रहा था कि एक वधिक ने उसे घायल कर दिया, जिसके कारण वह

बिना स्नेह की आर्द्रता के प्राण मरु भूमि बन जाते हैं। देख यह मृग निर्दोष हिरण अपने निष्कम्प नेत्रों और मुख मुद्रा से यह बता रहा है कि तेरा यह कार्य अत्यन्त घृणित और निंदनीय है।

आर्य विधवा का भावार्थ

यह कविता हिन्दी के प्रसिद्ध कवि निराला जी की विधवा कवि से मिलती जुलती है। इसमें आर्य विधवा की पवित्रता की प्रशंसा करते हुए उसकी महत्ता पर विचार किया गया है।

कवि अनेक प्रकार की कल्पनाओं से उसके वैधव्य का चित्र अङ्कित करता है और बताता है कि जैसे शिशिर द्वारा उपवन की समस्त शोभा और श्री नष्ट करदी जाती है वैसे ही वैधव्य ने तेरी शोभा को छीन लिया है, अब तेरा जीवन करुण रस की सामग्री बन गया है, तू चचल गृहलक्ष्मी के स्थान में आज श्वेत पद्म पर शोभित सरस्वती बन गई है। तेरे ज्वलन्त नेत्र शिव की तरह वासना को भस्म किए दे रहे हैं। तेरा जीवन रातदिन चिता के समान जलता रहता है, तू स्नेह, सुख और शान्ति की प्रतीक्षा करती हुई इस संसार रूपी समुद्र में देवदीप के सदृश तैर रही है।

दुष्ट लोग तेरी पवित्रता को सहन नहीं कर सकते वे तेरे ऊपर कठोर कटाक्ष करते हैं, लेकिन तू दृढ़ता पूर्वक समस्त अपमान को सहकर शान्त रहती है।

तेरा निराशामय हृदय रूढ़ियों की चक्की में पिसता रहता है और तू परम त्याग की मूर्ति के सदृश अपने दुख के समुद्र में डुबो देती है, तू सदा अपने भाग्य को कोसती है, अपने प्रेमी के ध्यान में लीन होकर कभी २ मृदु मिलन का गीत गा लेती है।

हे विधवा! सहस्र बार नमस्कार है, तेरे पवित्र स्पर्श से मेरी काया पवित्र हो जावे, अखण्ड पवित्रता की धारा बहाने वाली

हे मन्दाकिनी ! तू इस लोक की अमर ज्योति है, मैं तुझे नमस्कार करता हूं।

इला-काव्य

इला के प्रति

(२)

हे इला ! अनोखी सुगन्ध से भरी हुई वनस्पति की प्यालियों को प्रकृति ने जहाँ उपस्थित कर दिया है, उस स्थान पर तू क्षण भर के लिए मेरे समीप निश्चिन्त होकर बैठ जा और मेरे प्यारे के नाम का एक बार उच्चारण कर। यह जीवन व्यतीत हो रहा है तू एक क्षणभर ठहर जा। मेरे प्यारे के नाम के उच्चारण का अधिकार केवल तुझे है। तू इस स्मरणीय स्थान के समस्त सुमनों को चुन ले, जीवन का जो क्षण बीत जाता है वह केवल कसक बनकर रह जाता है।

तू अपने जीवन की सावधानी से रक्षा करना और प्रखर आतप में प्रसन्न बनकर भविष्य की रचना करना, तू हिम में सूर्य के सदृश बन जाना और सुन्दर हास्य से नित्य दुखों को दूर करना। तू मेरे भविष्य को उज्ज्वल बनाना, मेरे मस्तक पर तूने जो कोमल हाथ रखा है, उसे तू सदैव वैसे ही रखकर मुझे नित्य दुलार करना।

दीवाली

तू विनाशकारी रक्त रंजित मतवाली ज्वालाओं को लिए हुए है। हे देवी! जब तू यहाँ पधारेगी उस क्षण को मैं कल्याणमय समझूँगा, उस समय कण २ से प्रचण्ड दावानल महा भीषण रूप में प्रगट होगी। चिरकाल से मनुष्य ने जो धार्मिक पाखण्ड और अनेक प्रकार की रूढ़ियाँ बना रखी हैं वे सब नष्ट हो जायें और चतुर्दिग प्रज्वलित क्रान्ति की ज्वाला प्राणों को घूट देने वाली सामाजिक प्रथाओं को जला दे।

जब अग्नि का ऐसा विराट रूप प्रगट होगा तब मुझे उस ज्वाला में भस्म होना आनन्दप्रद होगा।

विधात्री

इला का हाथ मेरे मस्तक पर रखा है और वह बड़े प्यार से उसे दबा रही है। मैंने कहा कि हे बहिन! आज तू फिर यह कह कि 'तू सुखी हो"

इला का प्रभात काल का सौन्दर्य नित्य मेरे ललाट पर लिखा जाता है, वह मेरी विधात्री है और वह मेरा कल्याण चाहने वाली है।

पृथ्वी के सुन्दर आंगन में जो नये २ फूल खिलते रहते हैं, उन्हें देखकर ऐसा मालूम देता है मानो विधात्री रात्रि को इस सुन्दर शब्दावली को लिख जाती है।

या ऐसा प्रतीत होता है कि इस समुद्र के चौरस किनारे को एक विशाल पट्ट समझ कर नवीन रूप में नित्य कोई चमकता हुआ लेख लिखा जाता है। इन सब चीजों से हे बहन, मेरे लिए तूं अधिक मूल्यवान है, तुझ से भी अधिक तेरी वाणी सुन्दर है और वाणी से भी तेरा हृदय सुन्दर है।

इला का हाथ मस्तक पर रखा हुआ था, उसने प्यार से दबाया और कहा भाई तू सुखी हो और फिर कहा आज भी सुखी हो।

काल कोठरी

यह संसार काल कोठरी के सदृश है, जिसमें मेरा जीवन कैद है—इसमें मैं तेरा स्मरण करता हूं जिससे जीवन का रहस्य खुलता है।

यह देह का जाल व्यर्थ है, इसके भीतर आत्म ज्योति का निवास है, जिसके कारण अन्तर नित्य प्रकाशित रहता है।

हे महन अनन्त दिव्य पथ अवरुद्ध है नहीं है परन्तु तेरा प्रेम का स्पर्श बड़ा कठिन है।

दैव ने दुःख की लता से मुझे लपेट लिया है और दुःख के ही फूल बना दिए हैं। हे महन, दुःख का घोल २ कर पीने में कितना आनन्द मिलता है।

आशा तृष्णा

हे। मेरे अतृप्त मन ने अनेक प्रकार की तृष्णाओं के वशीभूत होकर अशान्त और उद्विग्न होता हुआ कहाँ भटक रहा है। तू धर्म कर्म को छोड़कर निराधार जीवन व्यतीत कर रहा है और दिन रात नई २ आशाओं के कारण ज्ञान को भूल गया है। तू ग्रहण की अपेक्षा त्याग को अपना इसी में तेरा कल्याण है।

वासंती अभिलाषाएं आकाशों के पुष्प सी गूथती जाती हैं और जीवन के कुंज मधुर और हरे भरे दिखाई देते हैं। यह आशा सुनहरी है और नया स्पन्दन फिर इसे सजीव कर देता है लेकिन इस में कभी सन्तोष नहीं पाया, उमंग और अभिलाषाएं पल २ बढ़ती चली जाती हैं और मृग मरीचिका की तरह इनमें कभी तृप्ति नहीं मिलती।

ज्योतिमयी प्रकृति कभी २ निर्मम होकर सब मनुष्यों का विराट-रूप से दमन करती है। कोमल होने पर भी यह राक्षसी त्रिविध रूप रख गगन-दीप, सूर्य और चन्द्रमा को बुझा देती है जिसके कारण मलिनता छा जाती है और मनुष्य के हृदय से भय और करुणा की छायायें स्थान बना लेती हैं पर उसी में से फिर नई सृष्टि का जन्म होता है।

श्रद्धा की अदृश किरण नित्य चमकती रहती है, भले ही अंधकार का राज्य हो, प्रकृति महा समुद्र से अपनी रिक्तअंजलि को भर कर समुद्र रूप धारण करके अद्भुत रंगों वाला इन्द्र धनुष बनाती है। इस सृष्टि का पात्र दुखप्रद आँसुओं से पूर्ण नहीं है वरन् आँसुओं में भी सुख देने वाली श्रद्धा का निवास है।

स्वप्न

हे इला! दिवस ही क्या यह पृथ्वी भी एक स्वप्न है। पूर्व में विविध रंगों का सूर्य उदय होता है और स्वर्गीय सतरंगी कला का चमत्कार दिखाई देता है। सूर्य विश्व को मोहित करने की अद्भुत शृंखला निर्माण करता है और पृथ्वी में दिन रात की आँख मिचोनी खेलता है और अपना जीवन सत्य स्वप्न के समान दिखाई देता है।

हमारा सम्पूर्ण सुन्दर स्वप्न अनन्त विश्व के उस पार पहुँच जायगा जहाँ से हमारा जीवन आया है। भले ही पृथ्वी का यह स्वप्न एक क्षण में नष्ट हो जाय। लेकिन हे बहन! तुमको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, मैं भी तेरी आत्मा में नित्य निवास करूंगा और फिर हमारे सुन्दर जीवन साथ-साथ बीतेंगे।

स्वतन्त्रता

हे! स्वतन्त्रता तू मेरे दिल में मूर्तिमव होकर निवास कर,

देश के लिए यश और मृत्यु का आलिंगन करके तथा अपना कर्तव्य पालन करके जो वीर पुत्र चले गये हैं मैं उनको सदा स्मरण करता रहूं। कृपा कर तू मुझे उसी स्फूर्ति मय पथ को बता। तू आत्म ज्योति को जगा और उसे सदैव प्रज्वलित रख मुझे विजय मिले या मैं वीर गति पाऊं, इसकी चिन्ता नहीं मेरी तो इच्छा है कि मैं देश भक्त, योद्धा, धार्मिक और देश सेवक बनूं। मेरा शरीर पवित्र होजाय, और मैं तुझे स्मरण करता रहूं। बंधु प्रेम, भक्ति और क्रान्ति का ताण्डव, वर्ग और धर्म सब मेरी नसों में समा जायें। मुझे केवल स्वतन्त्रता की ही धुन लगी रहे और मैं मृत्यु के अमर आनन्द का अनुभव करता रहूं।

गुजरात

चाहे भारतवर्ष में सर्वत्र भ्रमण करते रहो और चाहे पृथ्वी तल पर घूम आओ लेकिन गुजरात जैसी विस्तार वाली फूलों से भरी, मनोहर, पूत और सजल सरिताओं से समुद्र को मिलाती हुई भूमि कहीं नहीं मिलेगी।

हे गुजरात, तेरी गोद सुन्दर हरियाली से पूर्ण है, जिससे सदा हृदय शीतल होता है। तेरे समान दूसरा और कोई नहीं है।

यहाँ हिमाच्छादित शिखरों वाले पर्वत नहीं है और न ध्रुव प्रदेश के बर्फों की सुन्दर लालिमा है। युद्ध नहीं है, परन्तु तब भी गुजरात के नाम से सब के हृदय में एक उमंग सी उठ आती है और भक्ति की एक अद्भुत लहर उठने लगती है. मैंने इसी भूमि में जन्म लिया है और मैं चाहता हूं कि यहीं मरूं।

सा आता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि तेरे रूप में कोई देवी परी उतर आई हो। मेरे मुख को उठाकर और मेरे मस्तिष्क पर चुंबन अङ्कित करके सिर को गोद में रखकर, मेरे वक्ष और कपोलों को थपथपाते हुए, और हृदय की धड़कन के साथ श्वास लेते हुए, जो अश्रु निकलकर मेरे कपोल पर ठहर गया है वह अमर है। जो कोई इस गहन पाठ को पढ़ना चाहे पढ़ले। ये विरल आँसू हृदय को शान्त देने वाले हैं।

निष्फलता का अनुभव मुझे नहीं हुआ। चाँद तारे सारी रात जागते हैं लेकिन इन सबसे अधिक अमूल्य वस्तु मेरे लिए तेरी स्मृति है जो मेरे हृदय में बसी हुई है। इस अनन्य रत्न का मैं यत्न पूर्वक सभालता हूं। तेरे अनन्त वात्सल्य की अमर बूंदों को चूमकर जो सुन्दर स्मृति में न डूबता हो वह जड़ है। उससे मैं तो तुम्हारे हृदय के निकट आता हूँ।